शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 15 अंक 85 (मूल क्रमांक 142)
सितम्बर-अक्टूबर 2022 मूल्य: ₹ 50.00

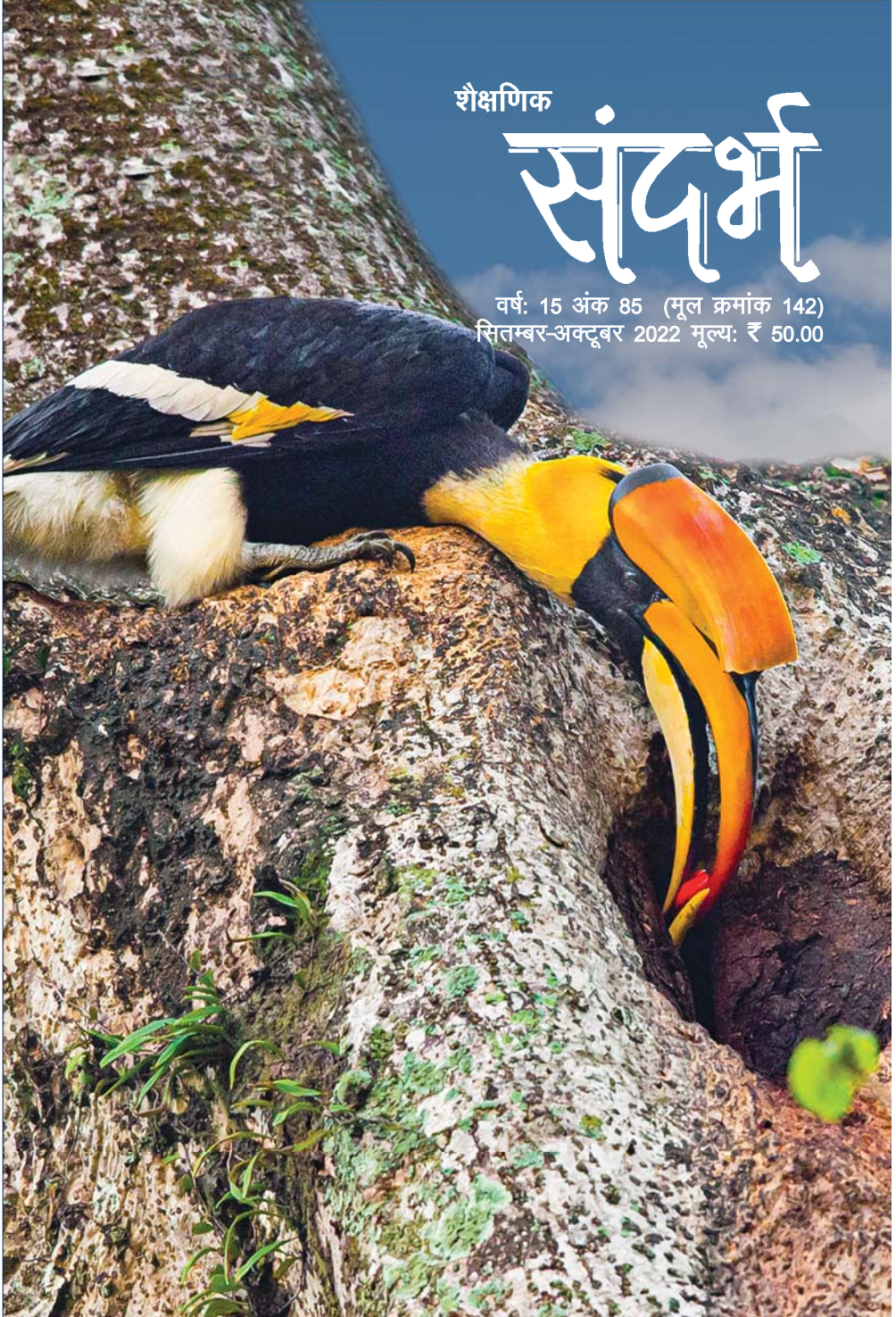

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

प्रबन्धकीय सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी,
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग
अनमोल जैन, श्रेया,
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 15 अंक 85 (मूल क्रमांक 142)
सितम्बर-अक्टूबर 2022

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: नर हॉर्नबिल मादा हॉर्नबिल को भोजन देते हुए। हॉर्नबिल का प्रजनन व्यवहार बहुत आश्चर्यजनक होता है। एक ही नर-मादा जोड़ा अनेक प्रजनन ऋतुओं तक साथ बना रहता है। घोंसला बनाने के लिए स्थान का चयन मादा की पसन्द से ही होता है जहाँ वह स्वैच्छिक कारावास में जाती है। दरअसल, सभी हॉर्नबिल मादाएँ अण्डे देने और चूज़ों की प्रारम्भिक परवरिश के लिए स्वयं को लम्बे समय के लिए बिलनुमा घोंसले में बन्द कर लेती हैं और भोजन लाने की ज़िम्मेदारी नर की होती है। घोंसले में घुसने के बाद मादा एक संकीर्ण छेद छोड़कर, पूरे द्वार को विष्ठा, उल्टी करके निकाले गए भोजन और तिनकों से बन्द कर देती है। हॉर्नबिल के बारे में और भी दिलचस्प बातों को जानने के लिए पढ़ते हैं सम्बन्धित लेख पृष्ठ 5 पर।

पिछला आवरण: हॉर्नबिल महोत्सव। हॉर्नबिल जंगल के स्वास्थ्य के संकेतक माने जाते हैं। वे बीज फैलाते हैं इसलिए उन्हें 'जंगल के किसान' कहा जाता है। लेकिन हॉर्नबिल की कई प्रजातियाँ निवास स्थान के नुकसान और शिकार की वजह से खतरे में हैं। अरुणाचल प्रदेश में इसे असुरक्षित प्रजाति मानते हुए, संरक्षित क्षेत्र के बाहर के जंगलों में न्याशी जनजाति की सहायता से हॉर्नबिल की आबादी को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड में हॉर्नबिल संरक्षण उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव का उद्देश्य अरुणाचल प्रदेश के *पक्के टाइगर रिज़र्व* में हॉर्नबिल के संरक्षण में न्याशी जनजाति द्वारा निभाई गई भूमिका के महत्व को पहचानना है। इस आयोजन में हज़ारों न्याशी एकत्र होते हैं और यह उत्सव मनाते हैं।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 1 - https://roundglasssustain.com/photo-stories/great-hornbill-nesting
Cover 3: https://www.chemwatch.net/hi/blog/how-does-honey-come-to-be/
Cover 4: https://www.civilhindipedia.com/blogs/blog_post/hornbill-festival

राज्यों की जिग्सॉ पहेलियाँ

खेल-खेल में जानें देश के अलग-अलग राज्यों का नक्शा

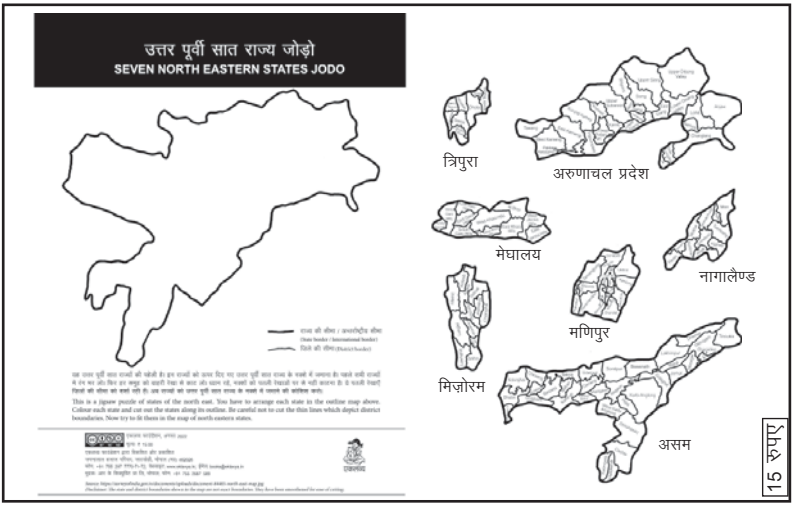

10 रुपए

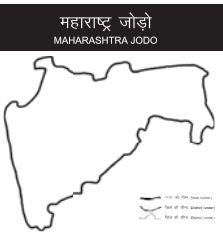

12 रुपए

12 रुपए

एकलव्य द्वारा विकसित ये आसान जिग्सॉ पहेलियाँ खेल-खेल में बच्चों को राज्यों/ज़िलों की जानकारी देने की मज़ेदार गतिविधि है। बच्चे अलग-अलग टुकड़ों में रंग भरकर, उन्हें जोड़ने की दिलचस्प गतिविधि कर सकते हैं।

100 या अधिक सेट खरीदने पर **25% डिस्काउंट**। साथ ही, पोस्टेज मुफ्त।

आज ही ऑर्डर करें...

पिटारा, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी,
भोपाल, म.प्र. पिन 462026. फोन: 0755 - 2977770, 2977771
ई-मेल: pitara@eklavya.in, www.pitarakart.in

अशोक की कहानी

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण की प्रक्रियाओं में निहित समस्याओं से शुरू करके, विद्यार्थी-शिक्षक संवाद एवं सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए, यह लेख शिक्षा के व्यापक तंत्र में 'ड्रॉप आउट' माने जाने वाले बच्चों के सम्दर्भ में एक महत्वपूर्ण सवाल खड़ा करता है। जिन्हें हम 'ड्रॉप आउट' कह देते हैं, कहीं वे 'पुश आउट' यानी शिक्षा तंत्र की कमियों की वजह से बाहर धकेले गए तो नहीं हैं?

63

सिर्फ मेरिट की बात करने से बात नहीं बनेगी

हम सभी की अलग-अलग पहचान होती है जो हमसे जुड़ी होती है। इनमें से कुछ पहचान हमारे साथ जन्म से ही जुड़ जाती हैं, और अन्य जिन्हें हम चुनते हैं और कमाते हैं। इस सम्बन्ध में आजकल, 'मेरिट' रोज़मर्रा में इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों में से है, जिसे एक अलग दर्जा दे दिया गया है। इस बातचीत में, लेखक समाज विज्ञान के आईने से मेरिट के इतिहास और मेरिटोक्रेसी से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में चर्चा करते हैं। यह बातचीत मेरिट और मेरिटोक्रेसी को लेकर हमारी सोच को विस्तृत करने का मौका देती है। बातचीत के द्वारा प्रमाणों का इस्तेमाल कर मेरिट की सच्चाई को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। क्या भारतीय समाज में मौजूद जाति, वर्ग और लिंग पर आधारित असमानताओं का मेरिट से गहरा सम्बन्ध है? आइए, इसे थोड़ा गहराई से समझने की कोशिश करते हैं।

67

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-85 (मूल अंक-142), सितम्बर-अक्टूबर 2022

इस अंक में

05 | अनूठे हॉर्नबिल
विपुल कीर्ति शर्मा

17 | जीवन-चक्र
कालू राम शर्मा

29 | मनुष्य की उत्पत्ति: भाग-2
सत्यजित रथ

41 | स्कूली दुनिया में शिष्टाचार
आनंद द्विवेदी

51 | शौचालय – एक संघर्ष गाथा
प्रियंका कुमारी

63 | अशोक की कहानी
कृष्ण कुमार

67 | सिर्फ मेरिट की बात करने से बात नहीं बनेगी
अमन मदान के साथ बातचीत

81 | अभियान - टाइटन: भाग-2
सतीश बलराम अग्निहोत्री

90 | दूध फटने और दही जमने में क्या अन्तर है?...
सवालीराम

95 | जलवायु उथल-पुथल के दौर में विलुप्त होती मधुमक्खियाँ
श्रेया

Upcoming Publication

Science, social science and mathematics

Price: ₹300

First Language

Price: ₹320

Thematic Studies

Price: ₹350

Reflections on Educational Practice is a series of three books containing essays written by erstwhile students of TISS, Mumbai's MAEE (Masters in Elementary Education) programme. Each of these essays has raised important questions on the pedagogy of mathematics, science, social studies, language teaching, TLM, teacher professionalism etc that require our attention.

To place the order :

Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in

www.eklavya.in | www.pitarakart.in

एकलव्य

अनूठे हॉर्नबिल

विपुल कीर्ति शर्मा

बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान में सैर-सपाटे का मेरा अन्तिम दिन था। सबकी निगाहें जहाँ बाघ को तलाश रही थीं, मेरी निगाहें एक बड़े आकार के खूबसूरत पक्षी को खोज रही थीं। तभी कर्कश आवाज़ ने सबका ध्यान खींच लिया और एक के बाद एक, चार मालाबार पाइड हॉर्नबिल, पंख फड़फड़ाते हुए कतार में हमसे दूर चले गए। पलभर के लिए देखने के बावजूद उन्हें भुलाना मुश्किल था। मोटी पीली चोंच, दो सफेद पट्टे वाले काले पंख, सफेद उदर और बड़े आकार के शरीर से इन्हें आसानी-से पहचाना जा सकता है। चोंच के ऊपर काले सींग के समान निकली संरचना तो इनकी खास पहचान है ही। इसी कारण इन्हें हॉर्नबिल कहा जाता है। बिल मतलब चोंच और चोंच पर सींग मतलब हॉर्नबिल। हॉर्न को फ्रेंच में 'कस्क' या 'हेलमेट' भी कहते हैं। हमारे यहाँ इसे 'धनेश' कहते हैं। बाद में, अरुणाचल प्रदेश के हरे-भरे जंगलों से पटे 'पक्के टाइगर रिज़र्व' में भी मुझे ग्रेट इण्डियन हॉर्नबिल को देखने का मौका मिला। इन्हें ग्रेट पाइड हॉर्नबिल भी कहा जाता है। ये हॉर्नबिल की बड़े आकार की प्रजातियों में से एक है। सफेद गर्दन, लाल आँखें

ग्रेट इण्डियन हॉर्नबिल। फोटो: आदित्य चौहान।

और गहरे पीले रंग की चोंच जो सिरे पर नारंगी रंग की होती है, इनकी प्रमुख पहचान है। चोंच के ऊपर का सींग भी एक पीले रंग की अवतल संरचना होती है। ये भारत के पश्चिमी भाग से होते हुए, इंडो-चायना, मलाया के दक्षिण और सुमात्रा के मध्य तक पाए जाते हैं। 4.5 फुट का आकार,

दिलचस्प खूबसूरती, अनोखापन और घटती आबादी के कारण इन्हें अरुणाचल प्रदेश और केरल ने राज्य पक्षी का दर्जा दिया है।

सभी पक्षी प्रजातियों में हॉर्नबिल एक दिलचस्प प्रकार का पक्षी समूह है। यह समूह अन्य प्रकार के पक्षियों से कई मायनों में भिन्न और असामान्य है। इन्हें ब्यूसेरोटिफॉर्मिस गण में रखा गया है। इस गण में लगभग 70 पक्षी प्रजातियाँ सम्मिलित हैं। इस गण को तीन कुल में विभाजित किया गया है जो क्रमशः ब्यूसेरोटिडी (उदाहरण - हॉर्नबिल), फोनिक्युलिडी (उदाहरण - वुड हूपो, सिमितारबिल्स) तथा अपउपिडी (उदाहरण - हूपो या हूपि) हैं। ब्यूसेरोटिडी कुल में 60 प्रकार की प्रजातियाँ रखी गई हैं जो अफ्रीका, एशिया और दक्षिण प्रशान्त के उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं। ग्रेट इण्डियन हॉर्नबिल की दो उपप्रजातियाँ दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में पाई जाती हैं। *बुसेरोस बायकॉर्निस* पश्चिम भारत में हिमालय से लेकर इण्डो-चायना और मलेशिया तक पाई जाती है। दूसरी उपप्रजाति *बुसेरोस बायकोर्निस कैवास्टस* की आबादी भारत के दक्षिण-पश्चिम तक ही सीमित है। इनका सामान्य आवास रेगिस्तान, घास के मैदान और जंगल हैं।

बहुउद्देशीय चोंच

सभी हॉर्नबिल की प्रमुख पहचान है, उनकी हँसिये के समान नीचे की ओर मुड़ी हुई बड़ी चोंच। प्रत्येक प्रजाति को चोंच और सींग भर से ही वैज्ञानिक पहचान लेते हैं। हॉर्नबिल की कुछ प्रजातियों में हॉर्न बहुत अधिक विकसित हुआ है और कुछ में केवल (अल्प विकसित) उभार मात्र रह गया है जैसा कि दक्षिणी अफ्रीका के सूखे सवाना में पाए जाने वाले सदर्न येलो-बिल्ड हॉर्नबिल में होता है। हॉर्नबिल में असामान्य रूप से बड़ी, भारी भरकम और अधिकांश मामले में रंगीन चोंच का पाया जाना वैज्ञानिकों के लिए अत्यन्त कौतुहल का विषय रहा है। चोंच के ऊपर हॉर्न के कारण प्राचीन रोमवासी इन्हें राइनोसिरस (गैंडा) बर्ड कहते थे। असामान्य रूप से लम्बी, बड़ी चोंच ने कार्टूनिस्ट और जीव जगत का वर्णन करने वाले लेखकों को भी आकर्षित किया है। कुछ आर्टिस्ट इनके कैरिकेचर बनाकर उन्हें अजीबोगरीब और जोकर बनाकर प्रस्तुत करते हैं। डिज़नी की 1994 में प्रदर्शित एनीमेटेड फीचर फिल्म - द लायन किंग - में ज़ाजू एक प्रमुख किरदार है। ज़ाजू एक उग्र, लाल चोंच वाला हॉर्नबिल है जो मेजरडोमो और राजा के सलाहकार के रूप में पाइड लैंड्स में कार्य करता है। हॉर्नबिल के जीवन इतिहास से प्रभावित होकर रस्किन बॉण्ड ने *हेरॉल्ड द हॉर्नबिल* नामक पुस्तक लिखी है।

हॉर्नबिल की चोंच पर दाँते, पलकों

के लम्बे बाल, पतला लम्बा शरीर व लम्बी पूँछ और कुछ प्रजातियों में गर्दन पर रंगीन छटा भी उन्हें विशेष बनाती है। जैसे हमारे हाथ अनेक कार्यों को पूर्ण करने में सहायक होते हैं वैसे ही पक्षियों में चोंच की भूमिका है। चोंच लड़ाई और शिकार के समय शस्त्र बन जाती है, और घोंसले के लिए तिनके बटोरते हुए, फल खाते और अनाज के दाने चुगते हुए चिमटा! पत्तों के नीचे छुपे कीट-पतंगों और केंचुए को खोद निकालने के लिए फावड़ा और परों को सँवारने तथा प्रीन ग्रन्थि से परों पर तेल लगाते समय कंघा बन जाती है! चोंच का एक इस्तेमाल और है – बड़ी, मज़बूत और कुछ प्रजातियों में रंगीन चोंच नर के उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है और मादा के सम्मोहन का केन्द्र।

चोंच के ऊपर स्थित हॉर्न का क्या कार्य है, यह तो पक्के तौर पर वैज्ञानिकों को ज्ञात नहीं है किन्तु यह देखा गया है कि सींग का पूर्ण रूप से विकास इसके वयस्क होने तक होता रहता है। नर में यह ज़्यादा विकसित और खोखला भी होता है इसलिए ऐसा समझा जाता है कि यह आवाज़ की तीव्रता बढ़ाने में तथा अधिक ज़ोर-से पुकारने में मददगार होता है। भारी एवं बड़ी चोंच के कारण हॉर्नबिल के शरीर में दो प्रमुख बदलाव हुए हैं। पहला तो यह कि गर्दन के प्रथम दो कशेरुक एटलस एवं एक्सिस एक साथ जुड़कर गर्दन को मज़बूती प्रदान करते हैं। दूसरा कि हॉर्नबिल की किडनी में तीन की बजाय दो लोब या पालियाँ होती हैं क्योंकि घुमावदार और लम्बी चोंच के कारण इन्हें पानी पीने में परेशानी होती होगी और वे कम पानी पीते होंगे। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि दो लोब वाली किडनी इस वजह से उपजा एक अनुकूलन है।

सभी हॉर्नबिल गुहा, बिल या कोटर में घोंसला बनाते हैं। अधिकांश घोंसले पेड़, चट्टानों या प्राकृतिक गुहाओं में बनाए जाते हैं। उचित गुहा न मिलने पर मानव निर्मित दीवारों और घोंसला बनाने के लिए निर्मित उपयुक्त कृत्रिम डिब्बों में भी ये अपना घर बना लेते हैं। तोते, मैना, कठफोड़वे और बार्बेट के उपयोग में आ रही बड़ी गुहाओं के पक्षियों को बेदखल करके, ये उन्हें अपने घोंसलों में परिवर्तित करते भी देखे गए हैं।

अनोखा प्रजनन व्यवहार व प्रेमालाप

उपरोक्त अनोखे लक्षणों के अलावा, सबसे आश्चर्यजनक इनका प्रजनन व्यवहार है। ग्रेट-इण्डियन हॉर्नबिल एवं अन्य हॉर्नबिल की प्रजातियाँ मोनोगेमस होती हैं। मतलब, अक्सर एक ही नर-मादा जोड़ा निष्ठापूर्वक अनेक प्रजनन ऋतुओं तक साथ में बना रहता है। ग्रेट हॉर्नबिल का प्रजननकाल जनवरी से प्रारम्भ होकर अप्रैल तक चलता है।

इनके नर और मादा में लैंगिक

चित्र-1: *मादा व नर मालाबार पाइड हॉर्नबिल। हॉर्नबिल में लैंगिक द्विरूपता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। मादा की तुलना में नर का आकार बड़ा होता है। और यही फर्क उनकी चोंच में भी आसानी-से देखा जा सकता है।*

द्विरूपता स्पष्ट दिखाई देती है। नर आकार में मादा से बड़े होते हैं, विशेषकर उनकी चोंच बड़ी होती है। नर के नेत्र की आयरिस लाल जबकि मादा की आयरिस सफेद होती है। प्रत्येक नर का गला फूला हुआ होता है। इसे गुलर पाउच कहते हैं। यह छोटे आकार के ढेर सारे फलों से भरा जा सकता है।

इण्डियन हॉर्नबिल में प्रेमालाप (कोर्टशिप) बहुत लम्बा होता है। मादा जिस भी नर से फल स्वीकार कर लेती है, मतलब उस नर का प्रणय साथी के रूप में चयन हो गया है। मादा को लुभाने के लिए नरों को सात-आठ घण्टे मेहनत करनी होती है। ऊँची आवाज़, बड़ा आकार और चटकीले रंग-रूप से मादा को नर के बेहतर स्वास्थ का तो पता चल जाता है किन्तु चूँकि सभी हॉर्नबिल मादाएँ अण्डे देने और चूज़ों की प्रारम्भिक परवरिश के लिए स्वयं को लम्बे समय के लिए बिलनुमा घोंसले में बन्द कर लेती हैं इसलिए नर द्वारा भोजन खोजकर लाना, कैद मादा को लम्बे समय तक खिलाना आदि निपुणता भी नर के चयन के लिए प्रमुख अहर्ता होती है।

प्रेमालाप के दौरान नर मादा के साथ हवा में कलाबाज़ियाँ करता है, मादा से चोंच मिलाकर प्रेम का इज़हार करता है और उसे प्रेमपूर्वक फल भेंट करता है! मादा उसकी निपुणता और समर्पण का परीक्षण

करती है। प्रेमालाप के दौरान जंगल ग्रेट-इण्डियन हॉर्नबिल की हुंकारों से गूंज उठता है। जब किसी नर का प्रणय के लिए चयन हो जाता है तो मादा भी नर की आवाज़ का जवाब स्वयं आवाज़ देकर करती है। प्रजनन ऋतु में अनेक नर एक पेड़ पर बैठे दिख जाते हैं। मनुष्य द्वारा पाले गए ग्रेट इण्डियन हॉर्नबिल की आयु लगभग 50 वर्ष होती है किन्तु जंगलों में ये 35 से 40 वर्ष तक ही जीवित रह पाते हैं। नर पाँच वर्ष की आयु में वयस्क होते हैं। मादा के लिए नौजवान नर आपस में चोंच लड़ाते, एक-दूसरे को खींचते या धक्का देते हुए देखे जा सकते हैं। कई बार छोटी-मोटी मारपीट दंगल में भी बदल जाती है और हवा में लड़ते-लड़ते दोनों प्रतिद्वन्द्वी नर पेड़ों से गिरते-सम्भलते भी दिखते हैं। जैसे-जैसे घोंसला बनाने का तथा मादा द्वारा अण्डोत्सर्जन का समय नज़दीक आता है, प्रणय लीलाएँ तथा चोंच मिलाना, चोंच से फलों का आदान-प्रदान बढ़ता जाता है। नर द्वारा चोंच से फलों का प्रेषण, नर एवं मादा के रिश्ते को मज़बूत करने का तरीका है। एक अदद युवा हॉर्नबिल प्रेमी के ये ही लक्षण हैं। अनेक हॉर्नबिल प्रजातियों में जोड़ा बनने की प्रणय लीला घोंसला बनाने के तीन महीने पहले ही प्रारम्भ हो जाती है। घोंसला बनाने के लिए उपयुक्त पेड़ या चट्टान खोजना भी आसान नहीं है।

इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल, धनेश

हॉर्नबिल की एक और प्रजाति जिसे इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल *(ऑसिसिरोस ब्रोसटेरिस)* कहा जाता है, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में पाई जाती है। यह प्रजाति छोटे शहरों में रहने की भी आदी हो गई है। शहर के यातायात और भीड़भाड़ वाले इलाकों से बेखबर इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल को उद्यानों और हरे-भरे छोटे इलाकों में भी देखा जा सकता है। घोंसला निर्माण के उचित और उपयुक्त स्थानों की कमी होने पर ये प्रायः पिछली प्रजनन ऋतु के दौरान उपयोग में लाए गए स्थान पर ही घोंसला बनाना पसन्द करते हैं। ये दीवारों में मौजूद बड़े छेदों को भी घोंसला बनाने के लिए उपयोग में ला सकते हैं। मध्यम आकार के ये पक्षी लम्बाई में लगभग 24 इंच के होते हैं। इनमें भी नर मादा से कुछ बड़े, दो-ढाई किलो वज़नी और मादा लगभग एक किलो की होती है। नर की चोंच के ऊपर स्थित सींग छोटा, नुकीला तथा मादा के सींग की तुलना में ज़्यादा विकसित होता है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है, इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल के शरीर का रंग ग्रे अर्थात् धूसर-भूरा होता है जबकि पूँछ का अन्तिम सिरा काला और सफेद होता है। नर की चोंच मोटी, भारी भरकम, सिर की तुलना में बहुत बड़ी और सफेद होती है जबकि मादा की चोंच अपेक्षाकृत छोटी और सिरे पर हल्की

चित्र-2: *मादा इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल (बाएँ) व नर इण्डियन ग्रे हॉर्नबिल (नीचे)।*

फोटो: विपुल कीर्ति शर्मा।

लालिमायुक्त पीली होती है। चोंच हँसिये के आकार की टेढ़ी होती है। ऊपर और नीचे की चोंच के बीच काफी जगह होती है जो शिकार को कसकर पकड़ने में सहायक होती है।

मादा हॉर्नबिल का कारावास

नर घोंसला बनाने के लिए मादा को अनेक स्थान दिखाता है और मादा की पसन्द ही घोंसले के स्थान के चयन में प्रमुख भूमिका अदा करती है। स्थान का चयन होने के पूर्व ही जोड़ा कई बार मैथुन करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मादा नर के शुक्राणुओं को लम्बे समय तक सम्भालकर रख सकती है। बिलनुमा घोंसले में घुसने के बाद मादा एक संकीर्ण छेद छोड़कर, पूरे द्वार को विष्ठा, उल्टी करके निकाले गए भोजन और अन्य सामग्री से बने सीमेन्ट से बन्द कर देती है। प्रत्येक मादा के लिए यह स्वैच्छिक कारावास का समय रहता है। छोटे आकार की हॉर्नबिल प्रजातियों में मादा 40 दिनों

तक बन्द रहती है तो बड़े आकार की बार-पाउच्ड रेथ्ड हॉर्नबिल 137 दिनों तक। कारावास प्रारम्भ करने के साथ ही मादा हॉर्नबिल अपने उड़ने के पंखों को और पूँछ के पंखों को भी गिरा देती है। वह बिलकुल असहाय और पूरी तरह से नर पर निर्भर हो जाती है।

बीसवीं शताब्दी में हॉर्नबिल पर शोध करने वालों के लिए हॉर्नबिल के घोंसला बनाने और चूज़ों को पालने के व्यवहार को पता करना, अनुसंधान का प्रमुख केन्द्र होता था। अनेक प्रश्नों के उत्तर अज्ञात थे। जैसे- क्यों हॉर्नबिल अपने घोंसले को बन्द कर देते हैं, जबकि अन्य पक्षियों में घोंसला खुला होता है? घोंसले को बन्द करने का कारण क्या सुरक्षा सुनिश्चित करना है? या सूक्ष्म वातावरण (माइक्रो क्लाइमेट) बनाए रखने के लिए? अथवा मादा स्वयं को अन्य नरों से बचाने के लिए ऐसा करती है? फिर घोंसले में बन्द मादा अपनी और चूज़ों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाहरी दुनिया से कैसे संवाद करती है? क्या होगा अगर एक नर मारा जाता है या बन्द मादा को छोड़कर दूसरी मादा के साथ चला जाता है?

यद्यपि उपरोक्त सभी प्रश्न बहुत रोचक लगते हैं किन्तु हॉर्नबिल के प्रजनन और बन्द बिलनुमा घोंसले में मादा का कैद रहना और बच्चों की परवरिश को समझना आसान नहीं था। प्रारम्भिक शोधकर्ताओं को तो यह लगता था कि नर हॉर्नबिल मादा को बिल में बन्द कर देता है। किन्तु बाद में बेहतर पड़ताल से यह रहस्य उजागर हुआ कि मादा ही स्वयं को बन्द कर लेती है, नर तो उन्हें प्लास्टर करने के लिए केवल सामग्री उपलब्ध कराते हैं। बिल के अन्दर के हालात जानने के लिए शोधकर्ताओं को पेड़ में बने बिल को काटकर देखने का विचार आया और कुछ ने डेन्टिस्ट के मिरर का सावधानीपूर्वक उपयोग करके व्यवहार को देखने का मन बनाया। किन्तु ये सब उपाय बहुत कारगर नहीं थे क्योंकि इन उपायों से आप पलभर के लिए देख सकेंगे किन्तु 80 दिनों की लम्बी कालावधि के दौरान सम्पूर्ण व्यवहार को जान पाना असम्भव था।

घोंसले का अवलोकन

1972 में एलन और जोआन रूट ने एन.बी.सी.टी. के लिए 'सीक्रेट ऑफ द अफ्रीकन बाओबाब' नामक वृत्तचित्र बनाया। उस ज़माने में हॉर्नबिल के घोंसले के अन्दर वीडियो रिकॉर्डिंग करना एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी। एलन और जोआन रूट ने बाओबाब की उन तीन शाखाओं पर खिड़की बनाकर, कालिख पोतकर काँच लगाया जहाँ पहले भी हॉर्नबिल ने घोंसले बनाए थे। उन्हें उम्मीद थी कि जब हॉर्नबिल फिर से घोंसले का इस्तेमाल करेंगे तो वे वीडियो बना पाएँगे। वह दिन 21 महीनों बाद

आया, जब एक डाल की खोह में मादा ने स्वयं को बन्द किया और पहला अण्डा फूटने के प्रमाण शाख के नीचे पड़े अण्डों के कवच से ज्ञात हुए। अब सावधानीपूर्वक कालिख पुता काँच हटाकर, उसके स्थान पर पारदर्शी काँच लगाकर ऐसे वीडियो शूट करना था कि अँधेरा भी बना रहे और हॉर्नबिल के व्यवहार में विघ्न भी उत्पन्न न हो। थोड़े समय के लिए कालिख पुता काँच हटाया जाता और उसकी जगह पारदर्शी काँच लगाकर रियोस्टेट से रोशनी डाली जाती और वीडियो बनाने के प्रयास प्रारम्भ होते, किन्तु उसी समय मादा हॉर्नबिल रोशनी से असहज होकर काँच को मल द्वारा पोतने और छुपाने का प्रयास करने लगती। गंदे हो गए काँच को दोबारा बदलने के बाद पूरी प्रक्रिया प्रारम्भ करने के पहले ही फिर से नया काँच भी मादा द्वारा गंदा कर दिया जाता था। इसलिए बहुत-से नवाचारी प्रयासों के बावजूद ये प्रयोग असफल रहे।

किन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि हॉर्नबिल कृत्रिम नेस्ट बॉक्स में भी अण्डे दे सकते हैं तो डिजिटल वीडियो रिकॉर्डिंग और इन्फ्रारेड कैमरों के इस्तेमाल ने घोंसलों के अन्दर रिकॉर्डिंग को बहुत आसान बना दिया। अब वैज्ञानिक मादा द्वारा घोंसले में स्वयं को बन्द करने से लेकर बच्चों के घोंसले से बाहर निकलने तक के पूरे घटनाक्रम को सिलसिलेवार रिकॉर्ड करके देख सकते थे।

2008 में माइकल जोसेफ फिन्नी ने अफ्रीका के येलो-बिल्ड हॉर्नबिल *(टोकस ल्यूकोमेलास)* पर अपना शोध प्रारम्भ किया। उन्होंने घोंसले के लिए उपयोग किए जा सकने वाले 47 डिब्बों को पेड़ों पर दो मीटर की ऊँचाई पर तार की सहायता से बाँध दिया। डिब्बों को पानी प्रतिरोधी बनाया गया था। साथ ही, डिब्बों में सीसीटीवी युक्त इन्फ्रारेड कैमरे और ऑडियो रिकॉर्डिंग के लिए मनुष्य के कान जिन ध्वनि तरंगों को नहीं सुन सकते हैं, उन्हें भी रिकॉर्ड करने की व्यवस्था की गई थी। डिब्बे के ऊपर ढक्कन को खोलकर समय-समय पर अण्डों, चूज़ों और मादा का वज़न और अन्य जानकारियाँ भी हासिल की गईं। इस प्रकार वीडियो और ऑडियो रिकॉर्डिंग से अनेक अनसुलझे रहस्यों को समझा जा सका। घोंसला बना रहे वयस्कों और घोंसले के चूज़ों के पैरों में रिंग भी पहनाई गई। इससे बाद के वर्षों में उन्हें पहचानकर और अधिक जानकारियों को एकत्रित करना सम्भव हुआ।

नर हॉर्नबिल की सहभागिता

फिन्नी ने अपने शोध में बताया कि येलो-बिल्ड हॉर्नबिल के नर, प्रेमालाप के दौरान भी मादा को भोजन भेंट करते हैं। इसके लिए वे फीडिंग कॉल से मादा को पुकारते हैं। प्रत्युत्तर में

मादा भी नर को पुकारकर स्वीकृति प्रदान करती है और नर उसके पास आकर उसे भोजन देता है। प्रमुख रूप से शाकाहारी होने के कारण भोजन में अनेक प्रकार के फल, फूल और बीज होते हैं किन्तु इसके अलावा अकशेरुकीय, छोटे स्तनधारी, सरीसृप एवं पक्षियों व सरीसृपों के अण्डे भी ये खाते हैं। प्रेमालाप के दौरान नर जंगली पौधों के पीले एवं सफेद फूल भी उपहार स्वरूप मादा को देते हैं। जब मादा हॉर्नबिल कृत्रिम घरों में अण्डे देने के लिए स्वयं को बन्द कर लेती है, उसके बाद अण्डे देने की प्रक्रिया 6 दिन बाद प्रारम्भ होती है।

अण्डे देना खत्म होने के साथ ही मादा के प्रमुख पर भी गिर जाते हैं और वह घोंसले के बाहर आने पर भी उड़ने में असमर्थ रहती है। मादा घोंसले में प्रवेश करने के बाद भोजन के लिए पूर्णतः नर पर निर्भर रहती है। नर निरन्तर मादा के लिए अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री लाता है। कई बार नर पेड़ की छाल और उखड़ गए प्लास्टर की मरम्मत के लिए सीमेंट भी लाता है। घोंसले में स्वच्छता बनाए रखने के लिए मादा हमेशा घोंसले के द्वार की ओर गुदा रखकर विष्ठा को ज़ोर-से निकाल फेंकती है। मादा घोंसले में औसतन 3-5 अण्डे देती है और अण्डों को 25 दिनों तक सेती है। लगभग एक-चौथाई अण्डों से चूज़े नहीं निकलते। ऐसे अण्डों को घोंसले में ही रखा जाता है। अक्सर बच्चों के आकार में काफी अन्तर देखा गया है जो यह बताता है कि सम्भवत: अण्डे कुछ अन्तराल के साथ दिए जाते हैं।

पूरे अध्ययन के दौरान एक बेहद आश्चर्यजनक तथ्य यह सामने आया कि कई बार मादा येलो-बिल्ड हॉर्नबिल अपने अण्डे और चूज़ों को खा जाती है अर्थात् वह स्वजाती भक्षण या फिनियल फेनेविलिज़्म करती है। अगर आपको लग रहा है कि मादा केवल क्षतिग्रस्त या अनिषेचित अण्डों का उपयोग खाने के लिए करती है तो यह सही नहीं है। ऐसा लगता है कि फिलियल फेनेविलिज़्म भूखी मादा के लिए पोषण प्राप्ति का एक तरीका मात्र है। जब मादा लम्बे समय के लिए स्वयं को घोंसले में कैद कर लेती है तो पोषण ढूँढ़ने और देने की सारी ज़िम्मेदारी नर पर आ जाती है। किन्तु नर केवल भोजन लेकर आ सकता है – भोजन की अनुपलब्धता पर उसका नियंत्रण नहीं है। यद्यपि सभी हॉर्नबिल भोजन की भरमार पर ही प्रजनन का निर्णय लेते हैं किन्तु वातावरण की परिस्थितियाँ लगातार बदलती रहती हैं। हम स्वयं महसूस करते हैं कि प्रारम्भ में बरसात होने के बाद अनेक दिनों तक बरसात नहीं हो, ऐसा भी अक्सर होता है। इससे भोजन की कमी आ जाती है। प्रजनन के प्रारम्भ में ही मादा को भविष्य के मौसम और भोजन की जानकारी के बगैर क्लच का आकार (अण्डे और बच्चों की

चित्र-3: *अपने कोटर में बन्द मादा हॉर्नबिल और चूज़ों के लिए भोजन उपलब्ध करने की ज़िम्मेदारी नर हॉर्नबिल की ही होती है।*

संख्या) तय करना होता है। जहाँ अन्य सभी पक्षी प्रजातियों में नर और मादा, दोनों मिलकर चूज़ों के लिए भोजन की उपलब्धता पूरी करते हैं, वहीं हॉर्नबिल के मामले में पूरी ज़िम्मेदारी केवल नर की होती है। अनेक बार मौसमी बदलाव के कारण घोंसले में बन्द मादा असहज स्थिति में होती है और उसे भोजन की कमी के कारण कुछ स्वस्थ चूज़ों को बचाकर कमज़ोर चूज़ों का भक्षण करना पड़ता है। कुछ अण्डों या चूज़ों का भक्षण करके वह बचे-खुचे अण्डों या बच्चों के भविष्य का जोखिम कम करती है।

अण्डों से चूज़े निकलने के बाद नर मादा को एक बार में एक ही खाद्य पदार्थ देता है। लाए गए भोजन का 34 प्रतिशत मादा स्वयं खाती है और बाकी बारी-बारी से बच्चों को खिलाती है। वह नर द्वारा लाए गए किसी भी भोज्य पदार्थ को तोड़कर या टुकड़ों में बाँटकर सभी बच्चों को देने की बजाय पूरा भोजन एक चूज़े को देती है। जब भोज्य पदार्थ बड़ा हो और चूज़े उसे खाने में असमर्थ होते हैं तो मादा खुद ही उसे खा लेती है।

चूज़ों का व्यवहार

स्वयं को घोंसले में कैद करने के 53 दिन बाद मादा घोंसले से बाहर आ जाती है। तब तक चूज़े लगभग 25 दिनों की आयु के हो चुके होते हैं। चूज़ों को अब घोंसले के द्वार को पुनः सीमेंट से जोड़ना होता है और वे भी भोजन ग्रहण करने के लिए चोंच

अन्दर आ सके, उतनी दरार रहने देते हैं। मादा घोंसले से निकलने से पूर्व ही घोंसले का फर्श पेड़ की छाल के चूरे और अन्य सामग्री से इतना ऊँचा कर देती है कि उसके चूज़े आसानी-से घोंसले के बाहर झाँक सकें और भोजन प्राप्त कर सकें। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि अपनी लम्बी और मोटी चोंच के कारण नर कभी भी घोंसले के अन्दर झाँककर बन्द मादा और अण्डों एवं चूज़ों की स्थिति के बारे में पता नहीं लगा पाता। वह पूरी तरह से मादा की आवाज़ों (कॉल) पर निर्भर रहता है। कैसे मादा नर को आवाज़ से यह बताती है कि कितने भोजन की आवश्यकता है या किस प्रकार के भोजन की आवश्यकता है, यह अभी भी ज्ञात नहीं है। किन्तु यह पक्के तौर पर ज्ञात है कि नर और मादा में वार्तालाप से ही सभी समस्याओं का हल निकाला जाता है।

मादा के घोंसले से निकलते ही चूज़ों के व्यवहार में अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। मादा की उपस्थिति में जहाँ सभी चूज़ों को बराबर भोजन मिलता था, उसकी अनुपस्थिति में बड़ा चूज़ा ज़्यादा भोजन हथिया लेता है। मादा के घोंसले के बाहर आ जाने के बावजूद भोजन जुटाने का अधिकांश भार नर उठाता है। चूज़ों में लड़ाई और छीना-झपटी भी होती है और प्रायः बड़ा चूज़ा छोटे को दबाता है।

हॉर्नबिल का संरक्षण

अरुणाचल प्रदेश के 'पक्के टाइगर रिज़र्व' से लगे जंगलों में स्थिति अब पहले से काफी बेहतर है। जंगलों की कटाई के कारण उन पर पूर्णतः निर्भर सभी प्राणी, पक्षी, प्रायमेट्स व अन्य स्तनधारियों आदि की हालत बदतर होती जाती है। इस समस्या को दृष्टिगत रखते हुए डॉ. अपराजिता दत्ता ने 1996 में वन्य जीव संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए नेचर कंज़रवेशन फाउंडेशन की स्थापना की। यह एक गैर-सरकारी संगठन है और भारत के पूर्वी हिमालय में हॉर्नबिल के संरक्षण के लिए मुहिम चलाता है। इसे प्रमुख प्रजाति मानते हुए, हॉर्नबिल को संरक्षण देने हेतु संरक्षित क्षेत्र के बाहर के जंगलों में वनवासी समुदाय की सहायता से, वे इस पक्षी की आबादी को बेहतर करने के लिए प्रयासरत हैं। अपराजिता ने अपने शोध में बताया है कि वन पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य के लिए हॉर्नबिल अत्यन्त आवश्यक सिद्ध हुए हैं। हॉर्नबिल अनेक प्रकार के फलों को पूरा निगल जाते हैं और मल के द्वारा बीजों को पूरे जंगल में फैलाते हैं। इस प्रकार जंगल में फलदार पौधे अपने आप पनपते रहते हैं और पौधों की विविधता बनी रहती है।

भारत में पाई जाने वाली 9 हॉर्नबिल प्रजातियों में से पाँच अरुणाचल प्रदेश के उष्णकटिबन्धीय

जंगलों में पाई जाती हैं। राज्य की कुछ जनजातियों में हॉर्नबिल की चोंच और पंख आभूषणों को सजाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। साथ ही, मुख्यतः जंगलों पर निर्भर ये जनजातियाँ मांस के लिए भी हॉर्नबिल का शिकार करती हैं। इस वजह से हॉर्नबिल की सभी प्रजातियाँ गम्भीर खतरे का सामना कर रही हैं। सिमटते वनों और शिकार ने ग्रेट इंडियन हॉर्नबिल की आबादी को बहुत कम कर दिया है। धीमी प्रजनन क्षमता और बिलों में रहने वाला व्यवहार इन्हें ज़्यादा मुसीबत में डाल रहा है।

हॉर्नबिल संरक्षण के लिए विभिन्न सामुदायिक अभियानों के ज़रिए इन जनजातियों को हॉर्नबिल संरक्षण के कार्यक्रमों से जोड़ा गया है तथा उन्हें फायबर ग्लास से बनी हूबहू हॉर्नबिल चोंच प्रदान की जा रही हैं। ग्रामीणों को हॉर्नबिल और वन संरक्षण के लिए ज़रूरी, उनके द्वारा बीज फैलाने के महत्वपूर्ण व्यवहार के बारे में जानकारियाँ देकर, उन्हें इस पक्षी को संरक्षित करने हेतु प्रेरित किया जाता है। प्रतिवर्ष मनाए जाने वाले 'हॉर्नबिल न्याशी महोत्सव' में, जनजाति के ऐसे सदस्य जिन्होंने हॉर्नबिल संरक्षण में मदद की है, उन्हें सम्मानित किया जाता है। इन सब प्रयासों की वजह से पिछले कुछ वर्षों में हॉर्नबिल संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। अब इन जनजातियों के बहुत-से सदस्य जंगल के अभिभावक के रूप में कार्य कर रहे हैं और हॉर्नबिल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाश्म का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

फोटो: रितेश खाबिया

चित्र: कैरन हैडॉक

जीवन-चक्र

कालू राम शर्मा

नारंगी समेत तेरह बच्चे आठवीं कक्षा में आ चुके थे। जुलाई का महीना आधा बीत चुका था।

कक्षा में बच्चे, मास्साब का इन्तज़ार कर रहे थे। टाइमटेबल प्रधानाध्यापक की टेबल पर रखते हुए मास्साब ने सोचा, 'फालतू की चीज़ है। टाइमटेबल के हिसाब से चलना मुश्किल भरा काम है। दूसरे कामों के चलते पढ़ाई तो पानी में बह जाती है। मगर शिक्षा विभाग को तो टाइमटेबल चाहिए। ...ये रहा टाइमटेबल।' तभी मास्साब का ध्यान एकदम टूटा और उन्होंने देखा कि कमरे के बाहर कक्षा आठवीं के बच्चे खड़े हैं।

कमरे में से बाहर आकर मास्साब बच्चों के बीच खड़े हो गए। "तो क्या हाल हैं तुम लोगों के? ठीक हो?"

सभी बच्चों ने 'हाँ' में सिर हिलाया और बोले, "ठीक।"

"तो क्या योजना है? ...अब तो तुम प्रयोग करने में माहिर हो गए हो।"

मास्साब के मुँह से तारीफ सुनकर बच्चे गदगद हो रहे थे। मास्साब बोले, "असल में, अब तुम सबको और ज़्यादा मेहनत करनी होगी। फिर इस साल के बाद तो तुम लोगों को बड़े स्कूल में जाना होगा। आगे का विज्ञान अलग होगा।"

यह सुनकर बच्चों के चेहरे पर चिन्ता की लकीरें साफ दिखाई दे रही थीं। भागचन्द्र ने रघु को कोहनी मारी। "ले, अब क्या होगा?"

वे बच्चों की ओर प्यार भरी नज़रों से देखते हुए बोले, "नहीं, अभी चिन्ता नहीं करने की। अभी तो मन लगाकर पढ़ो। आठवीं में विज्ञान में तुम और अच्छे से प्रयोग वगैरह सीख लो। नौवीं में तुम्हें विज्ञान में शायद इस तरह के प्रयोग करने का मौका नहीं मिलने वाला है।"

इतना कहकर मास्साब फिर से कमरे में जाकर अपने काम में लग गए। बच्चे मास्साब से पढ़ाई शुरू

करने को लेकर पूछने की हिम्मत नहीं कर पाए। वे अब भी मास्साब के कमरे के बाहर ही खड़े होकर बातचीत कर रहे थे।

अगले साल क्या होगा?

नारंगी निराश होकर बोली, "अगले साल मेरे बापू बड़े स्कूल में भेजेंगे भी कि नहीं, पता नहीं।"

रघु बोला, "हाँ, हाँ... तेरे बापू तो पाँचवीं के बाद ही तुझे स्कूल भेजने का मना कर रहे थे।"

नारंगी अपने बाल की लट को उँगली में लपेटते हुए बोली, "हाँ रे... पर अगले साल क्या होगा, कुछ पता नहीं..."

रघु बोला, "देखो... मेरा तो क्या है कि पास हो गया तो ठीक, नहीं तो बकरी चराना पक्का।"

भागचन्द्र ने चुटकी लेते हुए कहा, "तो अभी भी तो चराता है। इसमें क्या गलत है।"

"...और इसरार तो सब्ज़ी बेचेगा।" इसरार ने उँगली अपनी ओर कर कहा। "चलो छोड़ो यार... आज क्या करना है, इसकी बात करो।" भागचन्द्र ने अपने हाथों को ऐसे झटका मानो वह इस समस्या से गीले हो गए हाथों को झटक रहा हो।

"विज्ञान में रटेंगे कैसे रे...?" रघु मायूस होकर नौंवी कक्षा की चिन्ता करने लगा था।

नारंगी समेत सभी बच्चे उलझन महसूस कर रहे थे। नारंगी ने चुप्पी तोड़ी, "जैसे सामाजिक अध्ययन और हिन्दी में रटते हैं...।"

"और मुझे तो गणित में भी रटकर काम चलाना पड़ता है। कुछ समझ में ही नहीं आता।" भागचन्द्र मुँह लटकाकर बोला।

रघु फुसफुसाया, "कोई चिन्ता नहीं अपुन को... अपुन का बापू अगले साल पढ़ने भेजने वाला नहीं।"

दिलचस्प विज्ञान

मास्साब ने कमरे की खिड़की में से बाहर की ओर झाँककर देखा कि बच्चे अब भी वहीं खड़े हैं। उन्होंने सोचा कि विज्ञान में कोई काम देकर बच्चों को व्यस्त कर दिया जाए। वे सोच में डूब गए। अलमारी खोलकर उन्होंने कागज़ों-फाइलों को उलटा-पुलटा और *बाल विज्ञान* किताब निकालकर पन्ने पलटने लगे।

कुछ देर बाद मास्साब कमरे से बाहर आए और बोले, "तो चलो, ऐसा करते हैं कि अब कुछ काम शुरू कर दें।"

दरअसल, बच्चे भी चाहते थे कि पढ़ाई प्रारम्भ हो। वे मास्साब की सहमति का इन्तज़ार कर रहे थे। पिछले दो सालों में विज्ञान ने बच्चों में काफी दिलचस्पी जगा दी थी। बच्चों को एहसास हो रहा था कि मास्साब उनके साथ विज्ञान में

बराबरी से बात करते हैं। खास बात यह कि बच्चों को स्वतंत्र रूप से सोचने और मन की बात करने का अवसर मिलता था।

मास्साब ने पूछा, "अच्छा ये बताओ..." बच्चे उतावले हुए जा रहे थे। बच्चे मास्साब से डरने की बजाय बराबरी से बात करने लगे थे। अतः नारंगी हिम्मत जुटाकर बोली, "मास्साब, आप कुछ कह रहे थे।"

मास्साब बोले, "हाँ, तो मैं क्या कह रहा था...? अच्छा हाँ, यह बताओ कि आसपास डबरों में पानी इकट्ठा हो गया है क्या?"

भागचन्द्र दूर खाई की ओर नज़र घुमाते हुए बोला, "मास्साब, एक बार ही बरसात हुई। थोड़ा पानी भरा था पर ज़मीन चूस गई।"

मास्साब रघु के कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "तो ऐसा करते हैं कि शुरुआत थोड़ी मज़ेदार करते हैं। चलो, पन्द्रह-बीस मिनट के बाद तुम्हारी क्लास में आ रहा हूँ..."

इतना कहकर मास्साब कमरे में कुर्सी पर बैठकर टेबल पर रखे कागज़ों में खो गए।

नारंगी को मिली इल्ली

इधर बच्चे स्कूल के मैदान में चहलकदमी कर रहे थे। एक बार की हल्की बरसात होने से ज़मीन पर छाई हरियाली धूप की वजह से कुम्हलाने लगी थी। भागचन्द्र, नारंगी और रघु चहलकदमी करते हुए स्कूल की बागड़ में लगी झाड़ियों और पौधों में खो चुके थे। जब भी मौका मिलता, वे पत्तियों की पहेली खेल लेते। नारंगी ने इस बार एक छोटी-सी पत्ती तोड़कर भागचन्द्र को दिखाई। भागचन्द्र इतराकर बोला, "जाली विन्यास।"

"और जड़?" नारंगी ने पूछा।

"सब कुछ मुझसे ही पूछेगी?"

"तो इसका मतलब कि तुझे पता नहीं है।"

"बस कर अब... मूसला।"

इतना कहकर भागचन्द्र वहाँ से दूसरी ओर चल दिया।

नारंगी को लगा कि भागचन्द्र को बुरा लग गया है। अब वह अकेली ही पौधों को देख रही थी। उसका ध्यान पत्ती की नीचे वाली सतह पर बैठी एक इल्ली पर अटक गया। वह इल्ली को ध्यानपूर्वक देखने लगी।

"अरे, देखो!" नारंगी चिल्लाई, मगर तब तक रघु और भागचन्द्र दूर जा चुके थे। नारंगी ने उन्हें आवाज़ भी लगाई मगर उन्होंने नारंगी की बात को अनसुना कर दिया। जिस पत्ती पर इल्ली थी, उसे नारंगी ने तोड़ लिया और कक्षा में लेकर पहुँच गई। वह पत्ती पर बैठी इल्ली का हैंडलेंस से अवलोकन करने में मग्न हो गई। अन्य बच्चे भी कक्षा में आ चुके थे।

कक्षा में नारंगी के हाथ में पत्ती देख भागचन्द्र ने इच्छा जताई कि वह भी हैंडलेंस से अवलोकन करना चाहता है। इस पर नारंगी ने नाराज़गी व्यक्त की। "जब मैं वहाँ बुला रही थी तब तो मुँह फेर लिया। यह इल्ली ही तो दिखा रही थी ...नहीं देखना है तो मत देखो।"

नारंगी, इल्ली की बड़ी-बड़ी आँखों में आँखें डाल रही थी। बीच-बीच में इल्ली की पीठ पर हौले से उंगली घुमाती। इल्ली तुरन्त अपने को सिकोड़कर प्रतिक्रिया देती। नारंगी ने हाथ फेरते हुए उसे वैसे ही पुचकारा जैसे कि वह अपनी गली के कुत्ते को पुचकारती है।

इस बार उसकी पुचकार सुनकर भागचन्द्र बोला, "मैडम, सुनाई नहीं देता इल्ली को।"

नारंगी ने भागचन्द्र की बात को अनसुना कर अपने को इल्ली के साथ व्यस्त रखा। अब तक मास्साब कक्षा में आ चुके थे। नारंगी ने सोचा कि मास्साब को इल्ली दिखानी चाहिए। परन्तु इससे पहले कि वह मास्साब के पास जाकर इल्ली दिखाती, मास्साब ने उसके हाथ में पकड़ी पत्ती पर इल्ली को देख लिया।

मास्साब को पास आता देख वह खड़ी हो गई। "मास्साब... ये बागड़ में थी।"

"अरे वाह... तो चलो आज तुम्हारी पढ़ाई इसी इल्ली से शुरू होगी।" मास्साब कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "ऐसा करो कि इस इल्ली को सब ध्यान-से देखो और इसका चित्र अपनी कॉपी में बना डालो। और हाँ, इसकी लम्बाई भी नापकर लिख लेना। याद है न, इल्ली की लम्बाई कैसे नापेंगे?"

मास्साब इतना कहकर वापस कुर्सी से उठे और प्रधानाध्यापक के कमरे की ओर चल दिए।

इल्ली का अवलोकन

एक ही इल्ली थी पूरी कक्षा में। पूरी कक्षा ने नारंगी को घेर लिया था। वह किसी तरह से पीछा छुड़ाना चाह रही थी। इस वक्त उसे सबसे ज़्यादा चिन्ता इल्ली की हो रही थी। वह चिन्तित थी कि कहीं उसके हाथ में इल्ली दब न जाए।

नारंगी ने एक सुझाव दिया – "क्यों न ऐसा करें कि हम बाहर चलें।"

"हाँ, ये ठीक रहेगा।" भागचन्द्र झेंपते हुए बोला।

नारंगी नाराज़ होकर बोली, "न-न-न... अब तू तो रहने ही दे। जब मैं इल्ली को पकड़कर लाई और दिखा रही थी, तब तो दादागीरी कर रहा था!"

"चल न...। अरे... सॉरी...।" भागचन्द्र महसूस कर रहा था कि नारंगी का नाराज़ होना स्वाभाविक है।

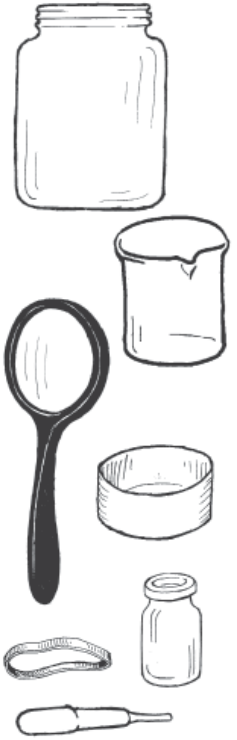

सभी बच्चे बरामदे में पहुँच गए थे। इल्ली को काँच के बीकर में पत्ती सहित रख दिया गया था। हैंडलेंस की मदद से इल्ली का सामूहिक अवलोकन किया जा रहा था। बच्चों ने कक्षा सातवीं में 'जन्तुओं का अध्ययन' नामक पाठ में जन्तुओं की जाँचबीन करना सीख लिया था। वे इल्ली का अध्ययन उसकी रचना को समझने के अन्दाज़ में कर रहे थे। अवलोकन कर वे अपनी कॉपी में इल्ली का चित्र बना रहे थे।

मास्साब सोच रहे थे कि यह बढ़िया होगा कि इल्ली का अध्ययन जीवन-चक्र के लिए किया जाए। हालाँकि, 'जन्तुओं के जीवन-चक्र' नामक पाठ की शुरुआत मक्खी के जीवन-चक्र से होनी है, मगर इल्ली से करना गलत नहीं होगा। दरअसल, मास्साब स्वयं भी समय और ज़रूरत के अनुसार अपने विचारों को तराशकर बदलते जा रहे थे। उनका तथाकथित प्रचलित तरीकों पर से भरोसा कम होता जा रहा था। इल्ली, तितली के जीवन-चक्र की एक अवस्था है, यह वे जानते थे। अतः उन्होंने तय किया कि तितली के जीवन-चक्र को समझने में इसे प्रयोग का हिस्सा बनाना चाहिए।

मास्साब बच्चों के क्रियाकलापों को बड़े ध्यान-से देख रहे थे। तभी उन्होंने बच्चों से कहा कि वे इस इल्ली को एक खोखे में रख दें। वे बच्चों की आँखों में आँखें डालकर बोले, "हाँ, हाँ भई... इसको एक खोखे में रख लो। और हाँ, खोखे में रोज़ाना, इल्ली के खाने के लिए, ताज़ी-ताज़ी पत्तियाँ डालते रहना।"

नारंगी बोली, "इल्ली मैं लाई थी। इसलिए इसको मैं पालूँगी।"

भागचन्द्र, इसरार, रघु और अन्य बच्चों ने तय किया कि वे सब भी इल्लियाँ खोजेंगे।

मास्साब सोच रहे थे कि नारंगी कई मामलों में कुछ ऐसा कर डालती है जो मिसाल बन जाती है। अगर नारंगी इल्ली को पकड़कर नहीं लाती तो इल्ली के अध्ययन वाला आइडिया उनके दिमाग में नहीं आता।

बच्चों ने मास्साब के निर्देशानुसार इल्ली खोजकर खोखे में रख दी।

नारंगी ने गत्ते का खाली खोखा लेकर, उसमें बागड़ की झाड़ी में से पत्तियाँ तोड़कर डाल दीं। कक्षा के

अन्य बच्चों ने भी ऐसा ही किया। दिलचस्प बात यह थी कि इल्ली वाला यह प्रयोग टोली की बजाय प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं कर रहा था। मास्साब ने हमेशा की तरह यह नहीं बताया कि इस प्रयोग के निष्कर्ष क्या होंगे। बच्चे भी परिणाम की चिन्ता किए बगैर प्रयोग सेट करने की प्रक्रिया में जुट गए थे।

प्रयोग क्यों?

बच्चों के दिमाग में यह बात प्रयोग-दर-प्रयोग अंकित होती जा रही थी कि प्रयोग को सफलतापूर्वक करना ही अपने आप में एक चुनौती है। दरअसल, बच्चों में उत्साह का सागर हिलोरे ले रहा था जो अमावस और पूर्णिमा के दौरान समुद्र में आए ज्वार की तरह *बाल विज्ञान* की पढ़ाई के दौरान चरम पर होता था। विज्ञान सत्य की खोज का दूसरा नाम है। विज्ञान में प्रयोग करने का अर्थ ही यह है कि उस सत्य को खोजा जाए।

अनुभव बताते हैं कि अगर बच्चों को उनकी दिलचस्पी का काम मिले तो वे पूरी निष्ठा और ईमानदारी से उस काम में लग जाते हैं। *बाल विज्ञान* ने एक महत्वपूर्ण काम यह किया कि बच्चों को उनकी मनपसन्द की मगर चुनौतीपूर्ण, विज्ञान की गतिविधियाँ और प्रयोग उपलब्ध कराए।

बाल विज्ञान ने पिछले दो सालों में ऐसे कितने ही अवसर बच्चों को दिए जिनमें वे अपनी-अपनी क्षमताओं का भरपूर इस्तेमाल कर पाए। इतना ही नहीं, इस दौर में वे अपनी और अपने साथियों की क्षमताओं और कमियों की पहचान कर सके। इस कार्य में शिक्षक की भूमिका अहम कही जा सकती है। पढ़ाई के दौरान कई बार शिक्षक का मामूली-सा दिखने वाला हस्तक्षेप भी काफी महत्वपूर्ण हो जाता।

अन्य बच्चे अपना-अपना खोखा घरों से ले आए थे। कोई जूते का खोखा, तो कोई चाय की पत्ती का खोखा लाया था। एक बच्चा प्लास्टिक की पारदर्शी बर्नी ले आया था।

वैसे बच्चों ने अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में खेतों, बगीचों, जंगल में आते-जाते हुए तरह-तरह की इल्लियाँ देखी थीं, मगर इस प्रयोग से वे जीवन-चक्र की निराली बात समझने वाले थे जो उन्हें पता नहीं थी।

मास्साब बच्चों की गतिविधियों पर पैनी नज़र गड़ाए हुए थे। जब पूरा काम हो गया तो मास्साब ने बस इतना ही कहा कि खोखों में रखी इल्लियों का पूरा ध्यान रखें, और जब तक इल्ली दिखती रहे तब तक वे रोज़ाना ताज़ी पत्तियाँ डालते रहें व इल्ली में होने वाले बदलावों का अवलोकन करें।

बच्चे अपने-अपने खोखों को बगल में दबाए हुए खुशी-खुशी घर की ओर रवाना हो गए थे।

* * *

मास्साब आज कक्षा में कुछ हैंडलेंस लेकर आए थे। उन्होंने टोलियों में हैंडलेंस पकड़ाते हुए कहा कि "आज हम मक्खियों के अण्डों को खोजेंगे।" यह कहते हुए टोलियों में बैठे बच्चों से मास्साब ने एक सवाल किया – "अब तो बरसात अच्छी हो चुकी है। तो अब तो डबरे भर ही गए होंगे?"

बच्चों को मास्साब का सवाल तो समझ में आ गया था मगर वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि आखिर डबरों में पानी भरने से उनका क्या लेना-देना।

रघु बोला, "जी मास्साब, अब तो तालाब में भी पानी आ गया है। बाग में एक बड़ा-सा डबरा है, उसमें मैंने पानी देखा है।"

मास्साब यह इसलिए जानना चाह रहे थे ताकि मेंढक के जीवन-चक्र का अध्ययन प्रारम्भ किया जा सके। मेंढक तो बरसात होने पर डबरों में भरे पानी में ही अण्डे देते हैं।

बहरहाल, मास्साब ने बच्चों को निर्देश दिए कि हम अपने साथ मिट्टी के कुल्हड़ लेकर ऐसी जगह पर जाएँगे जहाँ मक्खी ने अण्डे दिए हों।

कक्षा में मक्खियों को भिनभिनाते देख चन्दर बोला, "मास्साब, मक्खियाँ तो यहाँ पर भी हैं।"

"हाँ, ठीक कहा तुमने मगर यहाँ मक्खियाँ अण्डे नहीं देतीं। घरों में भी मक्खियाँ होती हैं मगर ये हर कहीं अण्डे नहीं देतीं। मक्खियाँ गोबर में अण्डे देती हैं। इसलिए हमें ऐसी जगह पर जाना होगा जहाँ गोबर हो। या तो जहाँ गाय-भैंस रहती हों वहाँ, या जहाँ घूरे में गोबर डाला जाता है, ऐसी जगह पर अण्डे खोजने होंगे। कभी-कभार गाय-भैंस के ताज़े गोबर में भी मक्खियों को अण्डे देते देखा जा सकता है।" मास्साब के निर्देश बच्चों को आसान लग रहे थे लेकिन असल में मक्खी के अण्डों को पहचानना व खोजना मुश्किल भरा काम है।

मक्खी के अण्डों की खोज

टोलियाँ अपने-अपने कुल्हड़ लेकर मास्साब के साथ मक्खी के अण्डों की खोज में निकल चुकी थीं। सबसे पहले गाय-भैंस जहाँ बाँधे जाते हैं, वहाँ जाकर अवलोकन किया मगर वह जगह एकदम साफ थी। अब यहाँ से मास्साब व टोलियाँ घूरे की ओर रवाना हो गए। घूरे में गोबर को कुरेदकर देखा मगर उसमें अण्डे नहीं मिले। हाँ, कुलबुलाती हुई मिट्टी के रंग की इल्लियाँ ज़रूर मिलीं। मास्साब यह देखकर प्रसन्न हो गए। उन्होंने टोलियों को अपने पास बुलाया। "ज़रा ध्यान दो, ये जो इल्लियाँ दिख रही हैं, ये मक्खी की हैं। इनसे मक्खियाँ बनेंगी। ऐसा करते हैं कि इन इल्लियों को कुल्हड़ में रख लेते हैं।" यह कहते हुए मास्साब ने एक टोली के

हाथ से कुल्हड़ लेते हुए उसमें कुरेदा हुआ गोबर भरकर इल्लियों को रख दिया।

दरअसल, पुस्तक में मक्खी के जीवन-चक्र का अध्ययन अण्डे से प्रारम्भ होकर मक्खी के बनने तक वर्णित किया गया था। मगर मक्खी के अण्डे खोजना बड़ा ही मुश्किल भरा काम था। मास्साब, इल्लियों को खोज लेने के बाद भी, अभी पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने कहा, "कहीं गाय-भैंस ने ताज़ा गोबर दिया हो, वहाँ चलते हैं।"

टोलियाँ बाग की ओर निकल पड़ीं जहाँ गाय-भैंस चर रही थीं। विष्णु ने इशारा करके बताया कि वह गाय गोबर कर रही है। बस फिर क्या था – गाय के गोबर के चारों ओर टोलियाँ जमा हो गईं। मास्साब ने

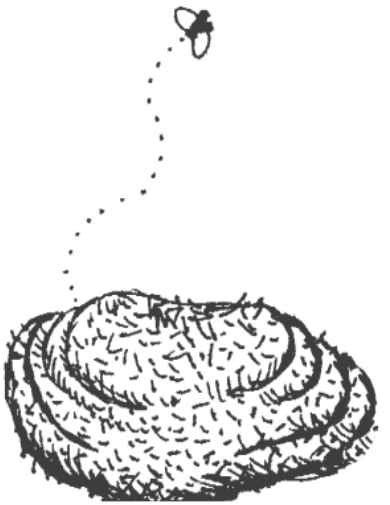

बच्चों को कहा कि गोबर पर मक्खियों के बैठने का इन्तज़ार किया जाए। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं गोबर पर। वे गोबर पर बैठतीं और उड़ जातीं। फिर बैठतीं व उड़ जातीं। मास्साब ने कहा, "धीरज से काम लेना होगा। मक्खियों को बैठने दिया जाए।"

अब एक मक्खी गोबर पर बैठी तो बैठी ही रही। मास्साब ने धीरे-से कहा, "चांस बनता है कि यह मक्खी अण्डे दे। देखना, गोबर में जो ये दरारें पड़ी हुई हैं, यह उनके अन्दर अण्डों को घुसाएगी।" मगर मक्खी उड़ गई। कोई मक्खी फिर से आई व गोबर पर बैठ गई। मास्साब मन-ही-मन सोच रहे थे कि अबकी बार तो यह अण्डे देगी ही। मक्खियाँ गोबर पर बैठ तो रही थीं मगर अण्डे नहीं दे रही थीं।

इस बार मास्साब ने एक दूसरी युक्ति सोची। उन्होंने अपनी जेब से एक पुड़िया निकाली व उसे खोला। बच्चों को कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर मास्साब शक्कर की पुड़िया क्यों साथ लाए हैं। मास्साब ने पुड़िया में रखे शक्कर के दाने गोबर पर बिखेर दिए। अब वे मक्खियों के आने का इन्तज़ार करने लगे। बच्चे समझ गए थे कि मक्खियों को रिझाने के लिए शक्कर बुरबुराई गई है गोबर पर।

थक-हारकर आखिर वहाँ से बच्चे व मास्साब चल पड़े। शक्कर बुरबुराने पर भी मक्खियों ने अण्डे नहीं दिए थे। दरअसल, मक्खियों को लुभाने के

लिए यह तरीका अख्तियार किया गया था कि शायद शक्कर की मिठास के चक्कर में वे गोबर पर कुछ देर बैठ जाएँ और अण्डे दें। मक्खियाँ अपने वंश को बरकरार रखने के लिए ऐसी जगह चुनती हैं जहाँ अण्डे से निकलने वाली इल्लियों को भोजन भी मिले, साथ ही वे सुरक्षित भी रह सकें।

अब वे स्कूल की ओर चल पड़े थे। उन्हें मक्खियों की इल्लियाँ मिली थीं। कुछ नहीं से कुछ तो बेहतर है। मक्खी के अण्डे नहीं मिले तो इल्ली के आगे की अवस्था से ही प्रयोग प्रारम्भ करना मजबूरी बन गई थी।

आखिरी कोशिश

एक बार फिर मास्साब को आस बनी और वे रास्ते के बाजू में घूरे में सड़ रहे गोबर में अण्डे खोजने लगे। सड़ रहे गोबर की ऊपरी सतह पर मास्साब की नज़रें टिकी हुई थीं। बच्चे मास्साब को देख रहे थे। मास्साब सोच रहे थे कि किताब में तो मक्खी के अण्डे प्राप्त करना बहुत आसानी-से लिखा है, मगर यह काफी मुश्किलों वाला काम है।

आखिर मेहनत रंग लाई। अण्डे मिल गए थे। मास्साब को गोबर के अन्दर महीन अण्डों के सफेद गुच्छे दिखाई दिए। उन्होंने गोबर को थोड़ा-सा कुरेदकर बच्चों को मक्खी के अण्डे दिखाए। बच्चों ने मक्खी के अण्डे पहली बार देखे थे। अण्डे सफेद-भूरे रंग के लगभग एक-डेढ़ मिलीमीटर लम्बे थे। मास्साब ने गोबर का वह हिस्सा कुल्हड़ में लिया जिसमें मक्खी के अण्डे थे।

बड़े सलीके से अण्डों को गोबर सहित कुल्हड़ में रख दिया गया था। मास्साब ने निर्देश दिया कि अण्डों को ज़्यादा छेड़ें नहीं। अण्डे मिलना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि थी। स्कूल पहुँचकर मक्खी के अण्डों का प्रयोग सेट करवाया। दरअसल, इस प्रयोग में तुलना का प्रावधान था। यह मान्यता पुराने समय से रही है कि मक्खियाँ गोबर से पैदा होती हैं। अतः इस मान्यता को जाँचने के लिए वैज्ञानिकों ने प्रयोग में तुलना का प्रावधान किया था। इस अध्याय में प्रयोग की डिज़ाइन इसी उद्देश्य से की गई थी कि बच्चे विज्ञान में तुलना के प्रावधान के महत्व को समझते हुए स्वतः जनन की धारणा को खण्डित कर सकें।

गोबर की जाँच

एक कुल्हड़ में गोबर में अण्डों को रखा व दूसरे कुल्हड़ में मात्र गोबर। जिस कुल्हड़ में गोबर में अण्डे थे, उस पर 'क' तथा जिसमें केवल गोबर था, उस पर 'ख' लिख दिया गया था। दोनों कुल्हड़ों के मुँह पर धागे से कागज़ को कसकर बाँध दिया गया था। कुल्हड़ के मुँह पर बाँधे गए कागज़ में आलपिन से छोटे-छोटे छेद कर दिए गए थे ताकि डिब्बे

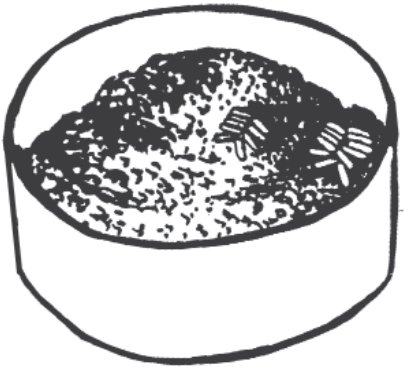

में हवा आ-जा सके लेकिन मक्खियाँ या अन्य कीड़े नहीं। अब यह देखना था कि क्या केवल गोबर से मक्खी पैदा होती है।

मक्खी की इल्लियाँ जो मिली थीं, उन्हें भी गोबर सहित कुल्हड़ में रखकर उसके मुँह पर कागज़ कसकर बाँध दिया गया था।

अब अगला कदम था अण्डों से निकलने वाली इल्लियों का अवलोकन। मास्साब ने बताया था कि देखना है कि एक-दो दिन के बाद 'क' कुल्हड़ में इल्लियाँ दिखाई देती हैं क्या।

* * *

'क' कुल्हड़ को पहली बार जब इसरार की टोली ने खोला तो उसमें गोबर की ऊपरी सतह सूखने लगी थी। टोली को गोबर की सतह पर कोई इल्ली नहीं मिली। टोली के केशव ने अब तक *बाल विज्ञान* का जीवन-चक्र वाला अध्याय खोल लिया था। उसने मक्खी के अवलोकन को लेकर पुस्तक की कुछ लाइनें पढ़कर सुनाईं – "शुरू में यह इल्ली अण्डे से ज़रा-सी बड़ी होती है। यदि तुम्हें गोबर की सतह पर अण्डे या इल्लियाँ नहीं मिलतीं तो गोबर को थोड़ा-सा कुरेदकर देखो।"

इसी के आगे एक सवाल और था जो पढ़ा गया। सवाल था – "क्या तुम्हें 'क' डिब्बे में मक्खी के अण्डे या इल्ली मिली?"

इस सटीक सवाल ने बच्चों को एक बार फिर अवलोकन करने को बाध्य कर दिया। सवाल में अण्डे या इल्ली, दोनों के मिलने की सम्भावना व्यक्त की गई थी। अर्थात् यह भी हो सकता है कि अब तक अण्डे फूटे ही न हों तो इल्ली कैसे दिखाई देगी।

टोली को न तो अण्डे दिखाई दे रहे थे, न ही इल्ली। अबकी बार इसरार ने वही करने का सोचा जो पुस्तक में उस सवाल की पहले की पंक्ति में लिखा था। इसरार तिनके की खोज में बाहर गया तब तक केशव झोले में से पेंसिल निकालकर कुल्हड़ के गोबर को कुरेदने लगा। वह गोबर में इल्ली खोज चुका था। "अरे, ये रही...।"

"कहाँ?" इसरार ने तिनके को कक्षा के कोने में पटककर इल्ली का अवलोकन करना चाहा। इल्ली गोबर में हिल-डुल रही थी। अगले सवाल के जवाब में टोली के सदस्यों ने इल्ली

का चित्र अपनी कॉपी में बना लिया। जैसे गोबर में इल्लियाँ रेंग रही थीं, वैसा ही चित्र बच्चों ने बनाया था। प्रत्येक बच्चे का चित्र अपने विशिष्ट अन्दाज़ में बना हुआ था।

तुलनात्मक अवलोकन

'क्या खाती होगी इल्ली गोबर में?' इस सवाल को लेकर टोली में चर्चा छिड़ चुकी थी। टोली का अनुमानित जवाब था कि गोबर ही खाती होगी। बच्चों ने आत्मविश्वास से अपनी कॉपी में लिख लिया। यह कार्य मास्साब के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए बच्चों ने सुचारु ढंग से कर लिया था।

बच्चे रोज़ाना कुल्हड़ में इल्ली का अवलोकन कर रहे थे। दिन-ब-दिन इल्ली बड़ी होती जा रही थी। अण्डे से इल्ली निकलने के चौथे रोज़ वह सुस्त पड़ने लगी थी। किताब के निर्देशानुसार बच्चे अवलोकन करने की कोशिश कर रहे थे कि क्या इल्ली के शरीर पर कोई खोल चढ़ने लगा है या चढ़ चुका है। यह अवस्था शंखी या प्यूपा होती है। शंखी का चित्र बच्चों ने अपनी कॉपी में बना लिया था। आगे के दिनों में बच्चों को शंखी का अवलोकन करना था। समय-समय पर मास्साब बच्चों से पूछ लेते कि प्रयोग कहाँ तक पहुँचा। मास्साब ने सावधानी बरतने को कहा था कि एक दिन ऐसा आएगा जब यह शंखी मक्खी में बदल जाएगी। अतः बच्चे जब कुल्हड़ को खोलते तो

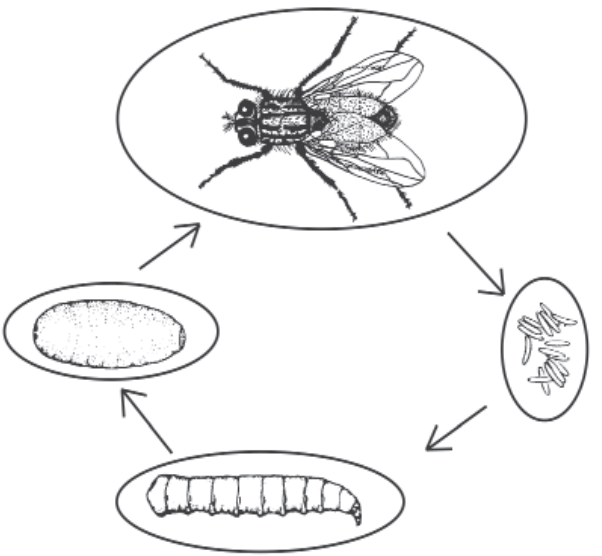

बड़े ही ध्यान-से कि कहीं मक्खी बनकर उड़ न जाए।

उधर बच्चों ने घर पर जो इल्ली पाल रखी थी, उसके अवलोकन भी किए जा रहे थे। बच्चों के घर पर खोखे में रखी इल्लियाँ बड़ी होती जा रही थीं। यह दिलचस्प बात है कि बच्चे अब मक्खी की इल्ली से तितली की इल्ली की तुलना करते हुए समझ रहे थे कि इससे भी कोई दूसरा जीव बनेगा मगर वे अब भी यह समझ नहीं पा रहे थे कि इससे जो जीव बनेगा, वह आखिर क्या होगा।

...जारी

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

सभी चित्र: कैरन हैडॉक: पिछले तीस सालों से भारत में शिक्षाविद, चित्रकार और शिक्षक के रूप में काम कर रही हैं। बहुत-सी चित्रकथाओं, पाठ्यपुस्तकों और अन्य पठन सामग्रियों का सृजन किया है और उनमें चित्र बनाए हैं।

मनुष्य की उत्पत्ति

सत्यजित रथ

एक मनुष्य होने के नाते हमारी अस्मिता क्या है? मनुष्य और मनुष्य-जैसी प्रजातियों के बीच क्या नाता रहा है? सबसे शुद्ध मनुष्य कौन हुआ, जब हम सभी के पूर्वज एक ही हैं? आज विज्ञान की मदद से, हम अपने और हज़ारों वर्ष पहले की मनुष्य प्रजातियों के जीवाश्मों के डीएनए पढ़कर न सिर्फ अपने प्रागैतिहास की समझ को गहरा कर रहे हैं, बल्कि ऐसे कई सबूत भी पा रहे हैं जो आज मनुष्यों के बीच नस्लीय गैर-बराबरी की दलील को खण्डित करते हैं। 2019 में *एकलव्य* द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक व्याख्यान में ऐसे ही कुछ विषयों पर चर्चा हुई। इस लेख के पहले भाग में हमने इन विषयों से जुड़ा व्याख्यान विस्तार से पढ़ा।

अब, लेख के दूसरे व अन्तिम भाग में, आइए पढ़ते हैं इस चर्चा के विषयों से उभरते विभिन्न प्रश्नों और उनके रोचक-तथ्यात्मक उत्तरों को। मनुष्य प्रजाति के इतिहास में स्त्री और पुरुष की हिस्सेदारी क्या बराबर की है? मनुष्यों का प्रागैतिहासिक फैलाव किस आधार पर हुआ? मनुष्य और मनुष्य-जैसी प्रजातियों के बीच क्या बुद्धिमत्ता का भी फासला था? जेनेटिक बदलावों से आखिर हम क्या समझते हैं? क्या मनुष्य का इतिहास मनुष्य के भविष्य का चेहरा भी दिखाता है? इसी तर्ज़ पर, प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत इस लेख को पढ़कर, चलिए अपनी समझ को और पुख्ता बनाते हैं।

? **प्रश्नकर्ता:** इस इलाके यानी भारत में पिछले 50-60 हज़ार सालों में आने वाली, इन तीनों में से कोई भी प्रजाति नहीं थी क्या? वे निएंडरथल भी नहीं थे, सेपियन्स भी नहीं थे...

नहीं-नहीं, सेपियन्स ही थे। 40 हज़ार साल पहले पश्चिमी एशिया में भी मनुष्य थे, दक्षिणी एशिया में भी मनुष्य थे। जब खेती इजाद हो गई तो खेती करने वाले लोगों का अब नया प्रसार होने लगा। वे मनुष्य ही हैं लेकिन नया

प्रसार होने लगा। वे जब आए तो निर्मनुष्य जगह में नहीं आए, वे मनुष्यों के बीच आए। ज़ाहिर है कि झगड़े-फसाद होने हैं, ज़ाहिर है कि काफी उठा-पटक होनी है मनुष्य समाजों में। उनके निशान हमें अपने डीएनए में दिखाई देते हैं। उसके बाद भी मध्य एशिया से चार-पाँच-छः हज़ार साल पहले कई लोग आए, उनके भी निशान हमारे डीएनए में दिखते हैं। रोचक बात मैं यह बता दूँ कि जब-जब मनुष्य के समूह ऐसी जगह में गए जहाँ पर पहले से मनुष्य समाज रहते हैं, तो डीएनए में निशान तो मिलते ही हैं लेकिन आगे का सवाल पूछते हैं।

मैंने कहा आपसे कि डीएनए के निशान हमें यह भी बता सकते हैं कि वह जो वंशावली है, वह बाप से है या माँ से है। तो अब मैं आपसे पूछता हूँ, जब निर्मनुष्य जगह मनुष्य प्रजाति फैली तो पुरुष भी गए होंगे, स्त्रियाँ भी गई होंगी। ज़ाहिर है, अगर बच्चे होने हैं तो दोनों का जाना ज़रूरी है। जब आप यह देखने लगो कि मनुष्यों के गुट, पहले जहाँ मनुष्य प्रजाति है, उस जगह में गए तो नए आए लोगों का जो जेनेटिक फुटप्रिंट हम देख सकते हैं, क्या उसमें स्त्री जेनेटिक फुटप्रिंट और पुरुष जेनेटिक फुटप्रिंट, दोनों समान मात्रा में दिखता है? आप क्या सोचते हैं कि क्या हुआ होगा?

? **प्रश्नकर्ता:** अलग-अलग दिखता होगा।

ज़ाहिर है कि अलग है। जब मनुष्यों का एक गुट, मनुष्यों के दूसरे गुट के होते हुए प्रदेश में प्रवेश करता है तो वह जो जेनेटिक फुटप्रिंट छोड़ता है, उसमें पुरुष फुटप्रिंट ज़्यादा प्रमुख होते हैं, और माँ की ओर से आने वाले फुटप्रिंट कम प्रमुख होते हैं, कम मात्रा में होते हैं। दुख की बात यह है कि

चित्र-1: *निएंडरथल के पाँव के अँगूठे की हड्डी - साइबेरिया की डेनीसोवा गुफा में सन् 2010 में एक खुदाई में पाँव के अँगूठे की एक हड्डी मिली। इसकी पहचान निएंडरथल के रूप में की गई। इस हड्डी को 50 हज़ार साल पुराना बताया गया है। इस हड्डी से प्राप्त डीएनए की जीनोम सिक्वेंसिंग से निएंडरथल की होमो सेपियंस के साथ तुलना करना सम्भव हो पाया। (https://www.britannica.com/topic/Neanderthal)*

हम में से किसी को भी इस मुद्दे को लेकर आश्चर्य नहीं है। क्योंकि हम आदी हैं कि जब ऐसे होता है, जब एक गुट दूसरे गुट के प्रदेश में प्रवेश करता है तो झण्डा, तलवार लिए जाते हैं। मैं बहुत थोड़ी-सी जानकारी के आधार पर सामान्यीकरण कर रहा हूँ। लेकिन यह फर्क अगर इस मात्रा में इतने सालों बाद दिखाई दे तो ज़ाहिर है कि हम बहुत पहले से ही ऐसे ही हैं। हम सब लोग।

तो कहने की बात यह है कि यह जो काले, पीले, गोरे, नीले लोगों का वर्गीकरण है, यह सब फालतू बातें हैं। हम सब अफ्रीका से आए, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में आए। जहाँ गए, वहाँ जो मिला वह अपने आप में समाकर जीते गए। किसी भी जगह पहुँचे मनुष्यों के गुट में ऐसी कोई अमानवीय खासियत नहीं है जो औरों में नहीं है। हरेक में अपना-अपना कुछ थोड़ा-बहुत फर्क है लेकिन वह इस हद तक है कि हर एक रामचरितमानस की, ज्ञानेश्वरी की कॉपी थोड़ी अलग दिखाई देती है। बस, उतने फर्कों की बात है। सिवा इसके, हममें ऐसा कोई फर्क नहीं है जो या तो हमारा वर्गीकरण कर सके, या तो उससे भी बढ़कर हममें ऊँच-नीच का, श्रेष्ठ-कनिष्ठ का भाव पैदा कर सके। ऐसी कोई चीज़ नहीं है। यह सब इस बिलकुल नई टेक्नोलॉजी की वजह से और नए वैज्ञानिक अनुभव के कारण हम एक अलग तरीके से कह पा रहे हैं।

? **प्रश्नकर्ता:** जब निएंडरथल का, डेनीसोवन के साथ लेन-देन हो रहा था, तो क्या वहाँ भी पुरुष और स्त्री की अनुवांशिक विरासत में (जेनेटिक विरासत में) फर्क पड़ता था?

यह सवाल सब लोगों को सता रहा है। सवाल का अच्छा जवाब देने के लिए अभी तक हमारे पास उतने सबूत मौजूद नहीं हैं जितने ज़रूरी हैं। आज न कल हम कुछ कह पाएँगे, इसके बारे में। लेकिन अभी तक, मेरे ख्याल से, हम वहाँ तक नहीं पहुँचे जहाँ इस प्रश्न के उत्तर में कुछ ठोस कह पाएँ। लेकिन प्रश्न बड़ा जायज़ है। इस प्रश्न के सन्दर्भ में एक कहानी बताता हूँ।

डेनीसोवा केव (गुफा) में, जहाँ डेनीसोवन अवशेष मिले थे, वहाँ हाल में, मतलब पिछले 2-4 सालों में मिले 1-2 हड्डियों के डीएनए अनुक्रम पढ़े गए, और उस डीएनए अनुक्रम में क्या पाया गया, पता है? आज हम कहते हैं कि आप में, हममें निएंडरथल अनुक्रम है, तो इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि किसी क्रोमोसोम में किसी एक जगह एक छोटा-सा हिस्सा निएंडरथल हिस्से से मिलता-जुलता है। फिर और किसी

चित्र-2: *डेनिसोवा गुफा - रुसी पुरातत्वविदों की एक टीम की देखरेख में डेनिसोवा गुफा के पास खुदाई चल रही है। यह फोटो सन् 2011 में चल रहे शोधकार्य की है।*

जगह, एक और छोटा-सा हिस्सा है जो निएंडरथल हिस्से से मिलता-जुलता है। चूँकि इतना पुराना प्रवेश है, इतनी पुरानी निएंडरथल या डेनीसोवन की देन है... निएंडरथल तो 35,000 साल पहले विलुप्त हो गए यूरोप से। डेनीसोवन कब विलुप्त हो गए, इसका हमें अच्छा अन्दाज़ा भी नहीं है। इतना पुराना मसला है यह। वही तीस-चालीस-पचास हज़ार साल पहले की बात है शायद। लेकिन उनका जो डीएनए है, वो हमारे डीएनए में फैला हुआ है।

? **प्रश्नकर्ता:** जैसा कि आपने कहा कि निएंडरथल का जेनेटिक अनुक्रम हम सबमें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मौजूद है। तो क्या जो यूरोपियन लोग हैं, उनमें यह प्रतिशत ज़्यादा है, या सभी में अलग-अलग है?

सभी में अलग-अलग है। काफी वैविध्य है इनकी मात्रा में – एक से पाँच प्रतिशत तक है तो उससे बहुत ज़्यादा कुछ कह नहीं सकते। अफ्रीकियों में बिलकुल नहीं है। बाकी हम सब में थोड़ा-बहुत है और वो जो थोड़ा-बहुत है, उसको लेकर बहुत-ज़्यादा कुछ कह नहीं सकते।

तो कहानी की ओर लौटते हुए... यह जो डेनीसोवन केव से डीएनए मिला, उसमें डेनिसोवन अनुक्रम है और निएंडरथल अनुक्रम है। लेकिन ऐसा नहीं है, तो कैसा है? तो आप सब जानते हैं कि आपको आधे क्रोमोसोम माँ से

आते हैं, आधे क्रोमोसोम बाप से आते हैं। तो ज़ाहिर है कि यदि उसी क्रोमोसोम का एक अनुक्रम ले लें, तो हमारे पास एक क्रोमोसोम के दो अनुक्रम हैं। एक बाप वाला अनुक्रम है, एक माँ वाला अनुक्रम है। यह जो डीएनए मिला, यह लड़की का डीएनए है। इस लड़की का अनुक्रम यूँ दिखता है मतलब कि उसकी माँ निएंडरथल है और बाप डेनिसोवन है। तो यह नहीं है कि इसके पूर्वजों में कुछ निएंडरथल या होमो-सेपियंस या डेनिसोवन कुछ है। इसके माँ-बाप निएंडरथल और डेनिसोवन थे। आपने अगर देखा होगा तो लोगों ने चित्र बनाए हैं कि एक निएंडरथल और डेनिसोवन का जोड़ा है। हाथ में हाथ लिए खड़ा है और उनके साथ में बच्ची है जो डेनिसोवन-निएंडरथल बच्ची है।

? **प्रश्नकर्ता:** मेरा प्रश्न है स्थानान्तरण को लेकर। तो इतने समय पहले जो स्थानान्तरित हुए यहाँ से, उन्हें लेकर दो कारण समझ आए पूरी बातचीत में। एक तो रोज़मर्रा की ज़रूरतों के हिसाब से उन्होंने स्थानान्तरण किया। दूसरा कारण जो नज़र आया वह है 'भीड़'। तो क्या इसका मतलब है कि उस तरफ जनसंख्या बहुत ज़्यादा थी...?

इसलिए मैं कह रहा था, भीड़ का मतलब हम सबके लिए अलग-अलग होता है। आज भी सोचिएगा अमेरिका के छोटे ग्रामों में आप अगर जाओ तो लोग कहते हैं कि आजकल गाँव में भीड़ बहुत है। और उनके कहने का मतलब क्या होता है कि एक ज़माने में मेरे घर के सामने के रास्ते पर से दिन भर में चार गाड़ियाँ गुज़रती थीं, आज दिन भर में 12 गाड़ियाँ गुज़रती हैं। भीड़ का मतलब हर एक के लिए अलग-अलग होता है। इसलिए मैंने कहा जब हम हंटर-गैदरर हैं, तो जंगल में, जंगल के एक टुकड़े में कितने लोग हंटिंग-गैदरिंग करते हैं, कितने लोग खुशी से हंटिंग-गैदरिंग करके रह सकते हैं? मैंने थोड़ी देर पहले कहा कि हम यहाँ से उठकर वहाँ गए क्योंकि एक ज़माने में यार, दिन भर में दो लोग मिला करते थे। आजकल दिनभर में चार-चार लोग मिलते हैं।

? **प्रश्नकर्ता:** फिर भी संसाधनों की मात्रा इतनी कम तो नहीं होगी? भूमि भी तो बड़ी थी।

तो इसीलिए इतने धीरे-धीरे फैले न, यही तो मैं कह रहा हूँ। यह दौड़ की बात नहीं है। यह शरणार्थियों की बात नहीं है। बात सिर्फ यह है कि आराम-से रहते थे। इसीलिए तो अफ्रीका में भी आराम-से रहते थे, लेकिन कोई थोड़ा उधर गया, फिर वहाँ से चन्द दिनों बाद कोई थोड़ा उधर गया, फिर वहाँ से उधर गया, फिर वहाँ से उधर गया, इसलिए इस तरीके से हमें

40-50 हज़ार साल लगे दुनिया भर तक पहुँचने के लिए। अगर बतौर शरणार्थी भागे-भागे जाते, तो चलकर जाते तब भी तो 2-4 सौ सालों में जा पहुँचते। तो यह संसाधनों की कमी की वजह से नहीं है। यह सिर्फ, मान लीजिएगा, स्टैटिस्टिकल एक्सीडेंट्स (सांख्यिकीय संयोग) की वजह से है। आप यहाँ रह रहे हो, आपके दो-चार बच्चे हैं। बच्चे इस ओर गए, उस ओर गए, उस ओर गए, यहाँ गए, वहाँ गए... चलता रहता है। इस दृष्टिकोण से देखें, तभी यह बड़ी धीमी रफ्तार समझ में आती है।

? **प्रश्नकर्ता:** अक्सर सेपियन्स और निएंडरथल की कहानियों में सेपियन्स को ज़्यादा बुद्धिमान बताया गया है। ऐसा क्यों?

तो यह एक लम्बी कहानी, पूरी मनगढ़न्त कहानी हमने बनाई। इसका कोई सबूत नहीं है। क्यों बनाई थी? हमने यह कहानी बनाई थी कि निएंडरथल एक कमज़ात इन्सान थे। अरे हर बात में कमज़ात, दिखने में कमज़ात थे, दिमाग में कमज़ात थे। यह सब हम कहते आए, हम यह भी कहते आए थे कि निएंडरथल की कोई संस्कृति नहीं थी। संस्कृति का मतलब क्या था 40 हज़ार साल पहले? हम सब भोपाल में खड़े हैं, भीमबेटका को देखिएगा, वहाँ पर जो चित्र उकेरे हुए हैं वे संस्कृति के द्योतक हैं। ऐसे ही चित्र पश्चिमी एशिया में दिखते हैं, यूरोप में दिखते हैं, रशिया में दिखते हैं। यदि हम यह सोचकर चलेंगे कि सिर्फ हमने ऐसे चित्र बनाए हैं तो वह सही नहीं होगा। पिछले 30 सालों में साफ ज़ाहिर हुआ है कि निएंडरथल की गुफाओं में भी ऐसे चित्र मौजूद हैं। हमने देखे नहीं थे। जब तलक देखे नहीं थे, एक तरीके के अनुमान लगाए चले जा रहे थे। जब तलक यह जाना नहीं था कि हमने उनके साथ बच्चे बनाए हैं तो किसी और तरीके से निएंडरथल के बारे में सोचे जा रहे थे।

लेकिन 'फर्क नहीं है', यह बात नहीं है। जो निएंडरथल कंकाल पाए गए हैं, खोपड़ियाँ पाई गई हैं, उनकी रचना काफी अलग है। दिमाग छोटा है कि बड़ा है, इसका अनुमान उन 2-4 खोपड़ियों के ज़रिए लगाया। अब उसमें परेशानी यह है कि आज मौजूद इन्सानों के दिमाग के आयतन को नापें तो उनमें भी काफी वैविध्य है और उस वैविध्य का बुद्धिमत्ता से कोई नाता-रिश्ता है ही नहीं। हम यह भी कहते आए हैं कि महिलाओं की बुद्धि कम होती है क्योंकि मस्तिष्क छोटा होता है। कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं है इसका। यहाँ तक कि यह सरासर झूठ है। अगर यह झूठ है तो हमारा यह कहना कि सिर्फ निएंडरथल का मस्तिष्क थोड़ा छोटा होने से हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह हमसे बहुत ज़्यादा मात्रा में मूर्ख थे, इसका भी कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। तो मैं यह कहूँगा कि निएंडरथल की, डेनीसोवंस

चित्र-3: *निएंडरथल हड्डियों के टुकड़े - क्रोएशिया की विंडिजा गुफा में मिली कुछ हड्डियाँ। ये तीन हड्डियाँ तीन महिला निएंडरथल की हैं। इन हड्डियों से डीएनए प्राप्त कर उनके जीनोम सिक्वेंस की तुलना वर्तमान इन्सान से की गई।*

की अलग संस्कृति थी। मैं यह नहीं कहूँगा कि उच्च थी या नीच थी, मैं यह ज़रूर कहूँगा कि अलग थी, और उस अलगता के आज भी हम फायदे चाहते हैं।

? **प्रश्नकर्ता:**- पर उनके पास तो भाषा नहीं थी। तो फिर?

कोई सबूत नहीं है कि निएंडरथल का भाषा से परिचय नहीं था। दरअसल, दो-चार जींस इन्सानों में ऐसे हैं जो निएंडरथल से शायद अलग हैं। तो कई शारीरिक भाषाविद यह कहते हैं कि चूँकि FOXP2, जो लैंग्वेज जीन के नाम से 20 साल पहले काफी चर्चा में आया था, जैसे जींस अगर निएंडरथल में अलग हैं तो इससे एक अनुमान लगा सकते हैं कि निएंडरथल के पास भाषा

नहीं थी। हालाँकि, मैं यह कहूँगा कि इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अगर निएंडरथल में भाषा थी तो अलग किस्म की थी।

? **प्रश्नकर्ता:** शुरुआती मनुष्य से लेकर आधुनिक मनुष्य तक, उसमें कई बदलाव होते आए हैं। क्या आगे भी उसके बदलने की सम्भावना है?

हम बदलते आए हैं, आगे भी हम बदलते जाएँगे क्या? इसका उत्तर 'हाँ' भी है और 'ना' भी। 'हाँ' इसलिए है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारा अनुक्रम बदलता जा रहा है। हम अपनी नानी-दादी की पीढ़ी से अलग हैं क्योंकि हमारे अनुक्रम में नकल के दौरान बदलाव तो आते ही जाते हैं। तो हम बदलते आए हैं क्या? हाँ! बदलते जाएँगे क्या? बिलकुल हाँ! सवाल बदलाव का नहीं है, सवाल यह है कि क्या हम आज तब से अलग हैं, किसी विशेष लक्षण में?

? **प्रश्नकर्ता:** क्या आप कहना चाह रहे हैं कि बुनियादी तौर पर बदलाव नहीं हुए हैं?

मैं यह नहीं कहना चाह रहा हूँ। मैं कहना चाह रहा हूँ कि जब आप बदलाव की ओर इशारा करते हैं तो जेनेटिक्स अनुक्रम के बदलाव से आपके कोई सायास प्रयास का अर्थ है ही नहीं। आप यह कह रहे हैं कि 40 हज़ार साल पहले का एक होमोसेपियंस ले लो और उसकी दाढ़ी-वाड़ी बनवाकर, बाल-वाल कटवाकर, उसे शर्ट-कुर्ता पहनाकर सामने खड़ा कर दो तो वह हमारे समाज में घुल-मिल जाएगा क्या? शायद जवाब है 'हाँ'। तो यहाँ तक हम नहीं बदले।

बदले कहाँ हैं? बदले यहाँ हैं कि एक उदाहरण देता हूँ – मध्य अफ्रीका में हमें मलेरिया का बहुत सामना करना पड़ा। बड़ी तादाद में बच्चे मलेरिया से मरते थे। तो हुआ यह कि हमारी जींस में से 1-2 जींस ऐसी हैं जो मलेरिया से कुछ हद तक संरक्षण देती हैं। उन जींस को लेकर आज हम, 50 हज़ार साल पहले के मुकाबले, अलग हैं। क्योंकि वे जींस 50 हज़ार साल पहले बहुत बड़ी मात्रा में हममें फैले नहीं थे। आज कई लोगों में, मध्य अफ्रीका में, वे जींस मौजूद हैं। इस तरीके का बदलाव 40 हज़ार साल में हुआ है, लेकिन बदलाव यहाँ तक नहीं गया कि हम बिलकुल अलग मनुष्य जैसे हो गए हों। तो मैं यह मानता हूँ कि 'क्या आगे चलकर बदलाव होना है?' तो इस छोटी मात्रा में, हाँ, होना है। बड़ी मात्रा में बदलाव होना है? मैं नहीं मानता कि कोई सबूत है, यह सोचने के लिए कि ऐसा बदलाव होगा।

इसमें और भी मुद्दा है – 40-50 हज़ार साल पहले ही क्यों, 19वीं सदी में

यहाँ भारत में जो बच्चे जन्म लेते थे, जन्म लिए 100 बच्चों में से पहले 5 सालों में कितने बच्चे मरते थे? बहुत बड़ी मात्रा में मरते थे। आज नहीं मरते। आज हम संस्कृति के स्वरूप से बदलाव को सह लेते हैं। जिस तरह से उस ज़माने में मलेरिया की वजह से हममें जेनेटिक बदलाव हुआ, वह भी शायद आज न हो। क्योंकि हम होने नहीं देंगे। हमारी संस्कृति में अब हमारे पास ऐसे साधन हैं जिनकी वजह से लोगों के मरने से जो जेनेटिक बदलाव होता है, उस तरीके का जेनेटिक बदलाव होने की गुंजाइश हम कम करते आए हैं।

प्रश्नकर्ता: आपने कहा कि लोगों के मरने से जो जेनेटिक बदलाव होता है... तो क्या आप प्रतिरोध की बात कर रहे हैं?

हाँ-हाँ बिलकुल! मलेरिया से बच्चे मरे। जो बच्चे ज़िन्दा रहे, उन बच्चों में एक विशिष्ट जीन का एक विशिष्ट स्वरूप उपस्थित था। तो आगे की पीढ़ी उन्हीं बच्चों से बनी। इस वजह से वह जो जीन का रूप था, वह समाज में फैलता गया। बस, इतनी बात है।

प्रश्नकर्ता: क्या बड़ा बदलाव तब हो सकता है जब कोई जेनेटिक म्यूटेशन हो?

हर जेनेटिक म्यूटेशन बिलकुल छोटा बदलाव होता है। जब जेनेटिक म्यूटेशन से बड़ा बदलाव होता है न, तो आम तौर से भ्रूण ही मर जाता है।

चित्र-4: *केबरा, इज़राइल में पाए गए निएंडरथल (होमो निएंडरथेलेंसिस) के जीवाश्म अवशेष।*

भ्रूण अगर ज़िन्दा रहे, जेनेटिक म्यूटेशन के साथ, तो जेनेटिक म्यूटेशन का असर बहुत छोटा और बहुत ही सीमित होता है।

? **प्रश्नकर्ता:** क्या वनमानुषों का इस कहानी से कोई जुड़ाव है? वनमानुष से मेरा मतलब चिम्पांज़ी से है।

कई लाख साल पहले हम चिम्पांज़ी से अलग हो चुके थे। चिम्पांज़ी की जो जेनेटिक विरासत है, यह जो पिछले दो लाख, चार लाख, पाँच लाख साल की बात हम कर रहे हैं, उससे बहुत पहले हम अलग हो चुके हैं। चिम्पांज़ी से, गोरिल्ला से, ओरांगुटान से, इन सब से बहुत ही पहले हम अलग हो चुके हैं। मैं जो मनुष्य-जैसी प्रजातियों की बात करता हूँ, वह सब इस अलगाव के बाद की बातें हैं। तो जिन्हें वनमानुष आपने कहा, यदि द्वीप एशियाई भाषा में वनमानुष का भाषान्तरण करें तो उनकी भाषा में 'ओरांगुटान'। ओरांगुटान का मतलब वनमानुष। लेकिन ये जो प्रजातियाँ हैं – गोरिल्ला, चिम्पांज़ी और ओरांगुटान – इन्हें मैं मनुष्य-जैसी प्रजातियों में गिन ही नहीं रहा हूँ, क्योंकि इनकी-हमारी जो वंशावली है, वह पूर्व-मनुष्य प्रजातियों से बहुत पहले अलग हो चुकी है।

तो मैं यही बार-बार कह रहा हूँ कि आप यह मानकर चले हैं कि हमारे पास कोई ठोस सबूत था उनको (निएंडरथल, डेनिसोवन और सेपियन्स को) अलग-अलग प्रजाति मानने के लिए। हम तो यूँ ही तुक्का लगा के माने थे कि अलग प्रजाति हैं। क्यों? क्योंकि जैसे उन्होंने कहा कि वे अलग दिखते हैं, अलग यूँ हैं, अलग त्यों हैं इसलिए। बाकी कोई सबूत नहीं था हमारे पास, इस बात का कि वे अलग प्रजाति थे। इसलिए आजकल एक बहस चल रही है कि हमें होमो-निएंडरथेलेंसिस नहीं कहना चाहिए, हमें होमो-सेपियंस नहीं कहना चाहिए, बल्कि होमो-सेपियंस निएंडरथेलेंसिस कहना चाहिए।

जब आप यूँ नामकरण करो, तीन शब्दों का नामकरण करो तो उसमें उसे सब-स्पीशीज़ कहते हैं। मतलब केवल यह कि फर्क बहुत छोटा है और संकरण से प्रजनन योग्य सन्तति निर्माण हो सकती है।

? **प्रश्नकर्ता:** क्या जानवरों की दुनिया में भी ऐसे उदाहरण हैं?

हाँ, हैं। घोड़ों में और ज़ेब्रों में। खासकर के ज़ेब्रों की एक नसल में प्रजनन योग्य संकरित सन्तति निर्मित होती है। बिलकुल सही तरीके से कहें तो घोड़ों की चन्द नस्लें और ज़ेब्रों की चन्द नस्लें, इनके बीच संकरण से प्रजनन योग्य सन्तति निर्मित होती है। तो इस तरीके के उदाहरण हैं। डार्विन की फिंचेस की बात करें, या तो जिन्हें इकोलॉजी और इवोल्यूशनरी बायोलॉजी में रिंग स्पीशीज़ कहते हैं। तो रिंग स्पीशीज़ की कहानी बताता

हूँ, क्योंकि वह डार्विन की फिंचेस को समझाने के मुकाबले, मेरे हिसाब से थोड़ी आसान है।

मान लीजिएगा कि यहाँ पर आर्कटिक सर्कल है। तो एक जगह, आर्कटिक सर्कल में, कुछ टर्न पंछी हैं, पास वाले द्वीप पर थोड़े अलग-से दिखने वाले टर्न पक्षी हैं। इन दोनों का संकरण हो सकता है? हाँ, हो सकता है। अब पास वाले द्वीप के जो पंछी हैं, उनसे परे एक और पंछियों का समूह है। क्या इन तीनों में संकरण हो सकता है? हाँ, हो सकता है। लेकिन उनके परे और हैं, उनके परे और हैं, उनके परे और हैं। अब पहले और तीसरे समूह में संकरण हो सकता है लेकिन पहले और आखिरी समूह में संकरण नहीं हो सकता।

***

तो कहने की बात यह है कि 'हम कौन हैं?' – जब हम यह सामाजिक सवाल अपने-आप के सामने खड़ा करते हैं, अपनी पहचान का, अपनी अस्मिता का, अपने मनुष्यपन का, उस सवाल का उत्तर हमें 'आज' 'यहाँ' 'इस समाज' के सन्दर्भ में देना है। हम अगर पीछे देखकर कहने लगें कि हम कोई इसलिए हैं कि हमारे पुरखे कोई थे, तो फिर इस मुद्दे के साथ भिड़िए कि हमारे पुरखे भी हम ही जैसे लोग थे। कोई खास तीस-मार-खाँ नहीं थे। तो यह कोई मत सुनाए हमें कि मैं यूँ हूँ, त्यों हूँ क्योंकि मेरे पीछे 5 हज़ार, 10 हज़ार, 20 हज़ार साल पुरानी विरासत है, वंशावली है, सांस्कृतिक सन्दर्भ है। न भाई! अगर आप में और हम में आत्मसम्मान की बात होनी है तो आज, इसी वक्त की होनी है।

धन्यवाद!

सत्यजित रथ: राष्ट्रीय प्रतिरक्षाविज्ञान संस्थान में तीन दशक तक शोध करने के बाद अब इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एजुकेशन एंड रिसर्च, पुणे में पढ़ाते हैं। पुणे से एम.बी.बी.एस., मुम्बई से एम.डी. (पैथोलॉजी) के बाद हैफ्किन इंस्टिट्यूट, ब्रौनडाइस युनिवर्सिटी व येल युनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन में पोस्ट-डॉक्टोरल शोध किया। चार दशकों से प्रतिरक्षा तंत्र पर शोध के साथ-साथ विज्ञान शिक्षण व लेखन और स्वास्थ्य व चिकित्सा से जुड़े सामाजिक व आर्थिक मुद्दों में रुचि।

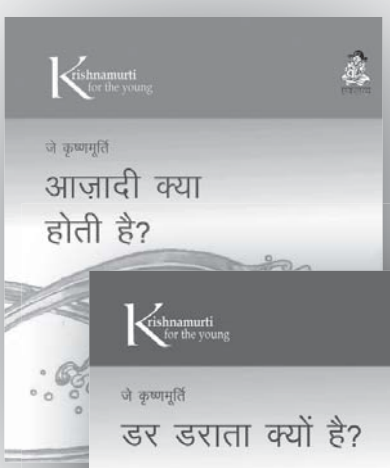

आज़ादी क्या होती है?
पेपरबैक, पेज: 28
मूल्य: ₹ 80

डर डराता क्यों है?
पेपरबैक, पेज: 28
मूल्य: ₹ 80

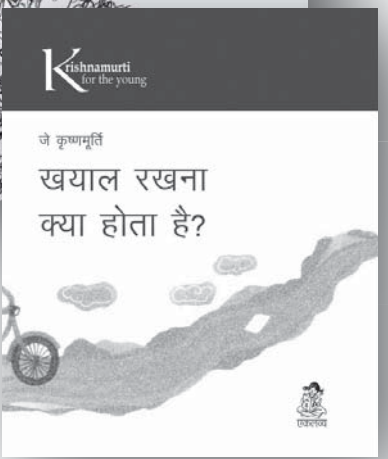

खयाल रखना क्या होता है?
पेपरबैक, पेज: 32
मूल्य: ₹ 80

प्रसिद्ध शिक्षाविद् जे. कृष्णमूर्ति के वक्तव्यों पर आधारित 'कृष्णमूर्ति फॉर द यंग' युवाओं को अपने भीतर की दुनिया – यानी दुख, डर, आनन्द, महत्वाकांक्षाओं, सफलताओं, असफलताओं आदि की दुनिया – को समझने और उनका सामना करने में मदद करने के लिए तैयार की गई किताबों की एक शृंखला है।

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें
फोन +91 755 297 7770-71-72; ईमेल pitara@eklavya.in
www.eklavya.in | www.pitarakart.in

एकलव्य

स्कूली दुनिया में शिष्टाचार

आनंद द्विवेदी

भूमण्डलीकरण के इस दौर में दुनियाभर में लोकतांत्रिक मूल्यों को तरजीह दी जाने लगी है जिसमें व्यक्ति की आज़ादी और उसकी गरिमा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। वर्तमान समय में जब हम एक लोकतांत्रिक समाज गढ़ने की बात करते हैं तो उसकी तैयारी स्कूल से शुरू हो जाती है। हमारे देश का संविधान लागू हुए करीब 72 साल हो गए हैं। जिस समय मैं इस लेख को लिख रहा था, उसके एक सप्ताह बाद ही 26 जनवरी मनाया जाना था। लेकिन मेरे मन में कई सवाल हैं। क्या वाकई हमारा देश संविधान के मुताबिक चलता है? क्या वाकई हमारे स्कूलों में लोकतांत्रिक नागरिकों को तैयार किया जा रहा है जहाँ सबको अपनी बात रखने की आज़ादी हो, व्यक्ति की गरिमा का सम्मान हो और दुनिया को जानने-समझने के लिए एक बेहतरीन स्थान और व्यक्ति का सानिध्य हो!

ए.एस. नील जो एक मनोवैज्ञानिक होने के साथ ही *समरहिल* जैसे लोकप्रिय स्कूल के संस्थापक थे, उनका कहना था कि हम दुनियाभर में स्कूली शिक्षा में हमेशा ही बच्चों के सम्मान और उनकी गरिमा को अनदेखा करते आए हैं। जिन बालकों की ऊर्जा का प्रयोग जीवन्त, न्यायसंगत और जागरूक समाज बनाने में किया जाना चाहिए, वे स्वयं न्याय से वंचित हैं। बहुत-से परिवारों में अभिभावकों द्वारा भी बच्चों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार देखने को मिलता है जिसमें मार-पिटाई, धमकी, गाली-गलौज आम बात है। जिस बचपन को हम अनदेखा करते रहे हैं, वही हमारा भविष्य होगा। इसी सन्दर्भ में, मैं तीन स्कूलों का किस्सा आपको सुनाता हूँ जिसमें दो सरकारी प्राइमरी स्कूल हैं और एक प्राइवेट इंटर कॉलेज है।

जब मैं सहम गया

पहला किस्सा एक प्राइवेट स्कूल का है। एक समय पर मैं इस स्कूल का छात्र था। इक्कीसवीं शताब्दी को शुरू हुए अभी दो ही वर्ष हुए थे। इलाहाबाद के हिन्दी माध्यम के बेहतर माने जाने वाले स्कूलों में से एक में मेरा दाखिला हुआ था। मैं अपने स्कूल दाखिले के पहले दिन का ही उदाहरण आपसे साझा कर रहा हूँ। जानबूझकर स्कूल के नाम का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। लेकिन मैं एक अन्य प्राइवेट प्राइमरी स्कूल

से पढ़कर इस नए स्कूल में आया था। इस स्कूल के नियम पिछले स्कूल से काफी अलग थे। स्कूल पहुँचते ही जूते-मोजे उतारकर मैंने प्रार्थना की। मैं कक्षा छठवीं का छात्र था। स्कूल में मेरा पहला दिन था इसलिए मुझे यहाँ के नियम-कायदे मालूम नहीं थे। अचानक 'सावधान' शब्द क्लास में गूँज गया। हड़बड़ा के क्लास में बैठे 50 लड़के एक साथ सावधान की मुद्रा में खड़े हो गए थे। क्लास में प्रार्थना से लौटने के बाद जो शोर था, वो एकदम सन्नाटे में बदल गया। आते ही शिक्षक ने कहा, "बैठ जाइए।" सारे लड़के बैठ गए। सब कुछ जैसे यंत्र से संचालित हो। मैं बैठने के बाद थोड़ा सहज हुआ ही था कि तभी शिक्षक ने एक, दो, तीन... संख्या बोलना शुरू कर दिया। लड़के अपने रोल नम्बर पर 'उपस्थित' कहकर चिल्लाते और संख्या आगे बढ़ जाती। 50 तक की गिनती में 6 छात्र अपनी उपस्थिति रोल नम्बर आने पर नहीं बोल पाए थे और उन्हें शिक्षक ने खड़ा होने का निर्देश दे दिया। रजिस्टर रखने के बाद अध्यापक खड़े हुए और एक छात्र के पास गए जो मेरे सामने ही खड़ा था। अध्यापक ने गुस्से में पूछा, "जब मैं उपस्थिति ले रहा था तो तुम क्या कर रहे थे?" लड़का तुरन्त गिड़गिड़ाते हुए बोला, "सरजी, माफ कर दीजिए, मैं सुन नहीं पाया।" तब तक सरजी ने उसके बाल पकड़कर 2-3 ज़ोरदार थप्पड़ जड़ दिए। फिर बोले, "मैं सिर्फ एक बार नम्बर बोलूँगा। बदतमीज़, तेरे लिए मैं बार-बार नहीं बोलूँगा।" फिर उन्होंने उसे बैठा दिया। बैठे लड़के खड़े छात्रों को

एकटक देखते रहे। क्लास में शान्ति भयानक लगने लगी थी।

सभी लड़कों की औसत उम्र 10-12 साल थी। अगस्त का पहला दिन था। उमस की वजह से छात्र पसीने से भीगे थे। उपस्थिति न बोल पाने वाले बाकी बचे पाँच छात्र शान्ति से खड़े थे और उन्हें अपना आने वाला समय बहुत तकलीफदेह नज़र आने लगा था। अगले पाँच मिनट में वही क्रिया उन पाँचों छात्रों के साथ भी दोहराई गई और उन छात्रों ने प्रार्थना की ताल से एक अलग ताल में चीत्कार किया। मेरी रूह काँप गई। मैं यह कहाँ पहुँच गया? लेकिन इससे भी ज़्यादा मैं तब घबराया जब शिक्षक मेरी ओर देखकर बोले, "हे यू, खड़े हो जाओ। तुम्हारी ड्रेस कहाँ है?" मैंने अपने अगल-बगल देखा। फिर आवाज़ आई, "नालायक, तुझी से पूछ रहा हूँ। दाएँ-बाएँ क्या देख रहा है?" मैं खड़ा हो गया और कुछ डरते हुए बोला, "जी, आज मेरा पहला दिन है। अभी 2-3 दिन लगेंगे ड्रेस बनने में।" उन्होंने फिर कहा, "एक महीना हो गया स्कूल खुले, अभी तक कहाँ थे?" "सर, मेरा दाखिला कल ही विद्यालय में हुआ है। अब मैं जल्दी ही ड्रेस बनवा लूँगा।" उन्होंने मेरा नाम पूछा और बोले, "एक दिन बाद अपना रोल नम्बर पूछ लेना।"

इन दिनों मेरे स्कूली अनुभव

ये तो मेरे स्कूली जीवन की बात हुई। अपने स्कूली अनुभव से गुज़रे हुए मुझे लगभग 20 साल हो गए हैं। अब मैं भारत के मध्यभाग यानी मध्य प्रदेश के सागर ज़िले में नौकरी कर रहा हूँ। संयोग से मेरा कार्य भी शिक्षक शिक्षा से ही जुड़ा हुआ है। अब मैं उस दौर से गुज़र चुका हूँ जब शिक्षकों से मुझे डर लगता था। अपने कार्य के सिलसिले में विभिन्न सरकारी स्कूलों में मेरा जाना होता है। तो चलिए, अब मैं आपको दो अन्य सरकारी स्कूलों की ओर ले चलता हूँ।

पहले सरकारी स्कूल में करीब 300 बच्चे पढ़ते हैं। 15 शिक्षिकाओं का स्टाफ है। कई कक्षाओं के 2-2 सेक्शन हैं। वहाँ की हेड मास्टर बहुत खुशमिजाज़ महिला हैं। उनके स्कूल में मैं महीने में कम-से-कम 3-4 बार जाता रहा हूँ। यह अनुभव वर्ष 2019 का है जब कोरोना ने अपनी काली छाया पूरी दुनिया में नहीं फैलाई थी। एक दिन हम स्कूल में कुछ शैक्षिक चुनौतियों पर चर्चा कर रहे थे। तभी स्कूल की मॉनिटरिंग करने एक अधिकारी आए। उनके आते ही मैम ने उन्हें खड़े होकर नमस्ते किया। वे अधिकारी मैम की कुर्सी पर जाकर बैठ गए और जाँचने के लिए एक-दो रजिस्टर माँगे। उन्हें चेक किया। स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या और उस दिन की उपस्थिति को मोबाइल ऐप में फीड किया। एक सूचना कम होने पर मैम को फटकार लगाई। मैम

खड़ी थीं और घबराई हुई थीं। मैंने उन्हें बैठने के लिए अपनी कुर्सी देनी चाही तो उन्हें दूसरी कुर्सी उठाकर बैठने का ध्यान आया। इसके बाद अधिकारी दूसरी कक्षा में चले गए। उस कक्षा में घुसने वाली सीढ़ी टूटी थी। उसे बनवा लेने और स्कूल पेंट करवा लेने का निर्देश देकर अधिकारी चले गए। यह देखकर बुरा लगा कि स्कूल की प्रधान अध्यापिका जिनकी उम्र करीबन 55 साल है और जो पिछले 25 सालों से शिक्षिका रही हैं, उनके साथ एक अधिकारी ऐसा व्यवहार करता है।

मैंने इस स्कूल में निरीक्षण के दौरान पाया है कि कुछ शिक्षिकाएँ और कई बार प्रधान अध्यापिका बच्चों को गुस्से में पीट देती हैं। इस पर उनका तर्क होता है कि थोड़ा-बहुत डर ज़रूरी है। स्कूलों में बच्चे खाली वक्त में लड़ते मिल जाएँगे। मैंने शुरुआती कक्षाओं के बच्चों की आपस में लड़ने की प्रवृत्तियों के बहुत ही आक्रामक रूपों को अनुभव किया है। इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं? शिक्षिका बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करती हैं? उस अधिकारी का अधिकारी उससे कैसा व्यवहार करता होगा? ये एक सरकारी स्कूल के प्रभारी के साथ होने वाले व्यवहार को दर्शाता है। प्रभारी शिक्षिका का व्यवहार भी अपनी अधीनस्थ शिक्षिकाओं के साथ अक्सर तानाशाहीपूर्ण ही रहता है।

प्रयास की यह कैसी बुनियाद?

एक अन्य स्कूल का किस्सा सुनाता हूँ। यह कोरोना काल के बाद

की दुनिया है। वर्तमान साल 2022. इसे घावों के भरने का वर्ष भी कहना चाहिए क्योंकि दुनिया मौत की भयावह तस्वीरों को इतने करीब से देखकर गुज़री है। यह एक ऐसा वक्त है जब दुनियाभर में लर्निंग लॉस और बच्चों के साथ-साथ वयस्कों के भी सामाजिक-भावनात्मक स्वास्थ्य पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा है। शिक्षकों के प्रशिक्षणों में भी बच्चों के भावनात्मक और सामाजिक स्वास्थ्य को बेहतर करने के लिए प्रेममयी और मनोरंजक वातावरण बनाने को लेकर चर्चाएँ हो रही हैं। इस सबके बावजूद स्कूलों की कैसी स्थिति है, यह जानने के लिए अब महामारी के बाद के एक सरकारी स्कूल की ओर चलते हैं।

मैं करीब 12 बजे स्कूल पहुँचा था। 50 बच्चों के स्कूल में दो ही शिक्षक थे। सरकारी प्राइमरी स्कूल था। इन दोनों शिक्षकों को मैं पहला और दूसरा शिक्षक कहकर ही सम्बोधित करूँगा। पहले शिक्षक कक्षा 1, 2 और 3 के बच्चों को एक साथ पढ़ा रहे थे। दूसरे शिक्षक कक्षा चौथी और पाँचवीं के बच्चों को गणित पढ़ा रहे थे। इस स्कूल में मैं पहली बार गया था। उद्देश्य था, नए शिक्षक साथियों के साथ काम की शुरुआत करना। उनकी शिक्षण विधियों और उनकी कक्षा में बच्चों के सीखने के स्तर को समझना। चूँकि दोनों शिक्षकों से विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों में मेरा मिलना हुआ था इसलिए वे मेरे चेहरे से परिचित थे। मैं भी उन्हें पहचानता था। स्कूल विन्ध्य पहाड़ियों से सटा हुआ था और क्लास कमरे के अन्दर न चलकर, प्रांगण में ठण्ड की खिली मीठी धूप के बीच लगी थी। पहले शिक्षक ने मुझे बैठने को कुर्सी दी। चौथी और पाँचवीं की क्लास बेशक कमरे के अन्दर चल रही थी। बच्चे टाटपट्टी पर नीचे बैठे थे। कोरोना के डर से मैंने कुर्सी पर बैठना उचित समझा।

मल्टी ग्रेड कक्षा थी जिसमें कक्षा 1, 2 और 3 के लड़के-लड़कियाँ, दोनों बैठे थे। मैंने ध्यान दिया कि कुछ बच्चे किताब से देखकर कविता लिख रहे हैं – 'जिसने सूरज चाँद बनाया'। कुछ बच्चे वर्कबुक में गणित में घटाव के सवाल हल कर रहे थे। दूसरे शिक्षक की गुणा पढ़ाने की आवाज़ बाहर तक आ रही थी। जिसमें वे 0 (शून्य) में संख्याओं के गुणन को समझा रहे थे। मैंने फिर से गुनगुनी धूप को महसूस किया। अपने चारों तरफ की प्रकृति की ओर देखा। चारों तरफ हरियाली थी। और दाईं तरफ ऊँचा पहाड़ और शान्ति। पढ़ने में तल्लीन प्यारे बच्चे। बच्चों को पढ़ाते शिक्षक मुझे फरिश्ते समान लग रहे थे। तभी शिक्षक एक बालिका की पीठ पर धप-से मारकर बोले, "कॉपी में लिख, इधर-उधर क्या देख रही है?"

सारे बच्चे और तन्मयता से अपना

काम करने लगे। मैंने खामोशी को थोड़ा तोड़ते हुए सर से कहा कि काफी खूबसूरत जगह पर स्कूल है। गाँव के बारे में पूछने पर सर ने बताया कि यह जंगल का इलाका है। आधे आदिवासी और आधे पटेल रहते हैं। उसके बाद मैं शान्त ही रहा क्योंकि मैं पढ़ाने में डिस्टर्ब नहीं करना चाहता था। शिक्षक ने पहली के बच्चों को अपने पास बुला लिया। बोले, "जो कविता लिख रहे हो, चलो, अब उसे पढ़ते हैं।" उन्होंने किताब से एक-एक शब्द बोलकर बच्चों को कविता पढ़वाई। फिर बच्चों से कहा, "चलो, अब आप पढ़ो।" बच्चों को थोड़ी कविता याद थी तो वे शब्द पर उँगली रख गलत-सही पढ़ने लगे। इस दौरान सर ने एक बच्चे को फिर थप्पड़ जड़ दिया जो किताब से अलग, दूसरी ओर देखने लगा था। पहली के करीब 5 बच्चे थे। पाँचों से उन्होंने कविता पढ़वाई। जो बच्चे नहीं पढ़ पा रहे थे, सर उनकी मदद भी कर रहे थे। लेकिन इस सबके बीच सारे बच्चों से किताब में ध्यान लगाने का ऐसा आग्रह था कि कोई बच्चा इधर-से-उधर देखा नहीं कि झट मार पड़ी। 2-3 बच्चे इस गतिविधि में पिट चुके थे। मैं शान्त था।

थोड़ी देर बाद दूसरे शिक्षक की कक्षा खत्म हो गई तो वे बाहर आए। मैं उनसे भी मिला। मैंने कहा, "सर, 0 को आप अच्छा समझा रहे थे।" सर ने बताया, "बच्चों को कई तरीकों से गणित सिखाना पड़ता है।" मैंने सहमति जताई। मैंने सर से पूछा कि क्या वे कुछ लिखते-पढ़ते भी हैं। सर ने बताया, "पहले लिखता था, अब लिखना बन्द कर दिया है।" बोले, "मैं बीआरसी, बीएसी – सब रह चुका हूँ।" इसी बीच उनकी कक्षा की एक बच्ची पहाड़े की किताब लेकर जा रही थी। उन्होंने देख लिया। तुरन्त उस लड़की को पकड़कर मेरे सामने धड़ाधड़ पिटाई की। शिक्षकों के व्यवहार से मैं स्वयं थोड़ा घबराने लगा था। फिर उन्होंने मुझे समझाया, "कुछ सवाल हल करने को दिए हैं। पहाड़ा नकल करने जा रही थी।" बच्ची किताब रखकर दोबारा कमरे में चली गई। सर बताने लगे, "अगर गुणा नहीं बन रहा है तो उसे जोड़ लो। या 9 का गुणा नहीं बन रहा है तो 6 का पहाड़ा पढ़ लो 9 बार। कुछ सोचो, नकल करने की ज़रूरत नहीं है।" मैंने उनकी बातों से सहमति जताई। "अभी थोड़ी देर में कक्षा से आता हूँ।" ऐसा कहते हुए वे फिर अपनी कक्षा में पढ़ाने चले गए।

मैं पहले शिक्षक के पास पुनः बैठ गया। अब वे दूसरी के बच्चों को घटाना बता रहे थे। लाइन खींचकर कैसे घटाना कर सकते हैं, ये सिखा रहे थे। 2-3 मिनट ही गुज़रे होंगे कि दूसरे शिक्षक की कक्षा से बच्चों के पिटने की आवाज़ आने लगी। धड़-धड़, धड़-धड़ा-धड़। सर सवाल गलत करने पर बच्चों को बेदर्दी से पीट रहे

थे और बोल रहे थे, "तुम लोगों को एक साल से कह रहा हूँ कि 9 तक पहाड़े याद कर लो, तुम लोगों को याद नहीं हो रहा है।" अब खूबसूरत पहाड़ मुझे अखर रहे थे। दोपहर एक बजे तक मैं दोनों शिक्षकों के पढ़ाने के तरीकों को समझने की कोशिश कर रहा था। दोनों शिक्षक अच्छा प्रयास कर रहे थे लेकिन उनके प्रयास की सारी बुनियाद ही गलत प्रतीत हो रही थी। मुझे लगा, ऐसे शिक्षकों को तो जेल में होना चाहिए।

घुटी हुई शान्ति मुझे रास नहीं आ रही थी। मैंने पहले शिक्षक से कहा, "सर, मैं बच्चों से थोड़ी पेन्टिंग करवाना चाहता हूँ।" सर ने इजाज़त दे दी और बच्चों को निर्देश दिया, "ठीक है, अभी यह काम बन्द करके पेंटिग बना लो।" बच्चे अब थोड़ा तनाव मुक्त दिख रहे थे। मैंने उन्हें सफेद कागज़ बाँटे। वे अपनी पेन्सिलों को छीलने लगे और अपनी पसन्द के चित्र बनाने लगे। कुछ बच्चे रंग लेकर आए थे, सर भी रंग का डिब्बा उठा लाए थे। कुछ क्रेयॉन और वॉटर कलर मैं भी लेकर गया था। बच्चे चित्र बनाने में मशगूल हो गए थे। वे एक-दूसरे के चित्रों को देख भी रहे थे। मैंने कुछ बच्चों को ही कलर दिए थे। वे आपस में रंग बाँटकर चित्रों में रंग भर रहे थे। करीब 40 मिनट बाद वे ढेरों चित्रों के साथ मेरे सामने थे। बच्चों ने फूल, घर, चिड़िया, सूरज, मोर, पहाड़, बादल, बरसात, लड़की, घास, ट्रेन और जंगल तक को अपने चित्रों में उकेरा था। जो बच्चे दूसरे शिक्षक की कक्षा में मार खा रहे थे, उनकी कक्षा खत्म होने पर वे बच्चे भी थोड़ा उदास मन से मुस्कराते हुए अन्य बच्चों की देखा देखी चित्र बनाने लगे थे।

बच्चों पर भय का असर

मैं आपको बच्चों और शिक्षकों की उन चुनौतियों की ओर ले गया जिनके बारे में हम कई बार गम्भीरता से बात करने से बचते हैं। शायद शिक्षक अपने द्वारा किए गए अत्याचारों को ये जामा पहना सकते हैं कि वे बच्चों की भलाई के लिए उन्हें मार रहे थे। या बच्चों में अनुशासन स्थापित करने के लिए ऐसा करना ज़रूरी है। लेकिन शिक्षक आखिर बच्चों को मारते क्यों हैं? कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि 'हो सकता है, शिक्षकों की भी शिक्षा ऐसे ही हुई हो। उन्हें लगता हो कि उन्हें अधिकार है, वे बच्चों की भलाई के लिए ऐसा कर सकते हैं'। हम इस बात से सहमत हो सकते हैं कि दोनों शिक्षक बच्चों को पढ़ाने में मेहनत कर रहे थे। लेकिन हम इस बात से असहमत नहीं हो सकते कि बच्चों के साथ होने वाला यह दुर्व्यवहार, दुनिया के प्रति उनकी मानसिकता और प्रतिक्रिया को प्रभावित करता है। अक्सर बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों द्वारा गलती होने पर, उनसे संवाद

करने की बजाय हिंसा करना ज़्यादा उचित समझते हैं। अपने से छोटे बच्चे को पीटना, आपस में मार-धाड़ करना जैसी हिंसा स्कूलों में आपको आम तौर पर देखने को मिल जाएगी। दूसरा, यदि बच्चों के मन में भय रहेगा तो वे कुछ नया सीखने की बजाय हमेशा बचाव की मुद्रा में रहेंगे। सवाल पूछना, तर्क करना, अपनी जिज्ञासा को दूर करने के लिए चर्चा करना आदि महत्वपूर्ण कौशल उनमें विकसित नहीं हो पाएँगे। इसके अलावा, लगातार तनावपूर्ण माहौल में सीख रहे बच्चों में कई बार कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी विकसित हो जाती हैं।

मैं अपने स्कूल के अनुभव पर वापस चलता हूँ - शिक्षकों की मार के डर से गृहकार्य पूर्ण न होने पर कई बच्चे घर से स्कूल के लिए तो निकलते थे लेकिन वे स्कूल न जाकर, पार्कों में घूमने चले जाते थे। गाइड की मदद से गणित और विज्ञान का होमवर्क करते थे जिस वजह से उनमें विषय की अवधारणात्मक समझ विकसित नहीं हो पाती थी। कभी भी पिट जाने के भय से कई बच्चे कक्षाओं में शिक्षकों से सवाल नहीं करते थे जिसके कारण आत्मविश्वास की कमी और समूह में अपनी बात कहने में झिझक देखने को मिलती थी। कुछ बच्चों में नशा और अपराध के प्रति आकर्षण दिखाई देने लगा था। कुछ बच्चों में शिक्षकों के प्रति विद्रोह और बदले की भावना सिर उठाने लगी थी। इन सबमें सबसे विनाशकारी था, स्कूलों से ड्रॉप आउट। सिर्फ मार-पिटाई के डर की वजह से इंटर के बाद कई छात्रों ने विश्वविद्यालय की ओर रुख नहीं किया। इकतरफा शिक्षा से उनका मन भर चुका था।

बच्चों पर दोस्ती का असर

एक अन्य बच्ची की कहानी के साथ मैं इस आलेख को अन्त की ओर ले जाना चाहूँगा। लड़की का नाम हेमलता था। वह सरकारी प्राथमिक शाला की कक्षा चौथी की छात्रा थी। शरीर से देखने पर वह कुपोषित लगती थी। मैं अपनी संस्था की तरफ से एक सरकारी स्कूल में शिक्षण कार्य के लिए नियमित रूप से जाता था। यह वर्ष 2018 की बात है। मैं कक्षा-1 के विद्यार्थियों के साथ हिन्दी भाषा पर कार्य करता था। स्कूल में चार शिक्षक पहले से कार्यरत थे। वे बच्चों के प्रति बहुत कठोर थे। मेरी कक्षा हमेशा शोरगुल से भरी रहती थी। मैंने बच्चों को यहाँ तक छूट दे रखी थी कि यदि उनका पढ़ने का मन न हो तो वे अन्य बच्चों को डिस्टर्ब किए बिना कक्षा के बाहर खेल सकते हैं। कई बार मेरी आधी कक्षा बाहर खेल रही होती थी और मैं बाकियों को पढ़ा रहा होता था। इस पर वहाँ के शिक्षक मुझ पर नाराज़ होते थे। इसलिए बच्चों को

कक्षा में रोकने के लिए मैं रोज़ नई कहानियाँ और कविताएँ लेकर जाया करता था। लेकिन बच्चे तो शरारती होते हैं, उन्हें रोका या बाँधा नहीं जा सकता।

साल के आखिर में मुझे बच्चों को आज़ादी देने का बहुत सुखद परिणाम देखने को मिला। एक तो कक्षा की उपस्थिति वर्ष भर अच्छी रहती थी। अक्सर गाँव के अन्य छोटे बच्चे जिनका स्कूल में नाम नहीं लिखा था, वे भी स्कूल आने लगे थे। दूसरा बदलाव जो मुझे दिखा, वह था बच्चों के आत्मविश्वास में। बच्चे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने लगे थे। साथ ही, वे काफी मुखर भी हो गए थे।

एक दिन हेमलता की कक्षा में पढ़ाने वाले अध्यापक हेमलता को मारते हुए मेरी कक्षा में ले आए। उन्होंने कहा, "इसे अभी अक्षर लिखना भी नहीं आता है। आज 6 महीने बाद स्कूल आई है। कुछ पूछो तो बोलती नहीं है। इसे आप सम्भालो।" पहले तो हेमलता आधे घण्टे तक रोती रही। मेरे कुछ भी पूछने पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। बच्चों को मैंने जो काम दिया था, वह भी उसने करने से मना कर दिया। यह सब देखते हुए ए.एस. नील की एक पंक्ति मुझे याद आ गई। ऐसे बच्चों के लिए प्रेम ही दवा का काम कर जाता है। उस दिन तो हेमलता ने कुछ नहीं किया। बस, वह चुपचाप बैठी रही। मैंने भी एक-दो दिन उससे कोई बात नहीं की। लेकिन धीरे-धीरे वह कक्षाई गतिविधियों से जुड़ने लगी जैसे कक्षा में कहानी सुनाना, गीत गाना, दिन की मुख्य बात बताना या कविता सुनाना। धीरे-धीरे हेमलता सबमें

शामिल होने लगी। जैसे-जैसे उसे यह एहसास होने लगा कि इस कक्षा में वह बेधड़क रह सकती है, उसने शब्दों को लिखना भी शुरू कर दिया। साथ ही, वह अन्य बच्चों के साथ उनकी शरारतों में भी शरीक होने लगी।

कक्षा में बराबरी का संवाद

इस प्रक्रिया में एक चीज़ जो महत्वपूर्ण थी वो यह कि मैं कक्षा में बच्चों के साथ टाटपट्टी पर बैठता था। मार-पिटाई, डाँट-डपट का नामो-निशान मेरी कक्षा में नहीं था। कक्षा शोर-शराबे से भरी रहती थी। मैं बच्चों के साथ बराबरी का संवाद करता था। बच्चे मुझसे और मैं बच्चों से हँसी-मज़ाक करते थे। मेरी कक्षा में बड़ों की तरह बच्चों को अपनी बात रखने की पूरी आज़ादी थी। वे बिना मेरी इजाज़त के कक्षा से बाहर जा सकते थे। बेशक, मैं इस बात का ध्यान रखता था कि जब बच्चे कक्षा के बाहर जाएँ तो वे सड़क पर न चले जाएँ।

लोकतांत्रिक समाज में संवाद और आपसी विचार विमर्श की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। लेकिन ज़्यादातर स्कूली संस्थाओं में बराबरी से संवाद का सम्पूर्ण अभाव दिखता है। सामाजिक और आर्थिक असमानता के इस दौर में हम स्कूलों में तो बराबरी का कुछ अनुभव दे ही सकते हैं। बच्चे सब कुछ सीखते हैं। अगर बड़ा छोटे को मारता है तो यह बात उनके लिए सामान्य-सी हो जाएगी। अगर स्कूल में शिक्षक तानाशाही रवैया रखते हैं तो बच्चा भी शिक्षक बनने पर तानाशाह बन सकता है। यदि शक्तिशाली ओहदे पर बैठा व्यक्ति अपने कर्मचारियों से बदतमीज़ी से बात करता है तो कहीं यह मानसिकता स्कूली शिक्षा की ही देन तो नहीं है? हम मार और भय से लोकतांत्रिक समाज और लोकतांत्रिक नागरिक नहीं बना सकते हैं। हम खुद संविधान तोड़कर दूसरों को संविधान नहीं पढ़ा सकते। स्कूलों को हम एक अच्छे समाज का निर्माण करने और बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ विकसित करने के लिए ज़िम्मेदार संस्था के तौर पर देखते हैं। इस ओर बढ़ने के लिए हमें बच्चों को भी बराबर का सम्मान देना पड़ेगा।

आनंद द्विवेदी: सामाजिक कार्यकर्ता हैं। सरकारी शिक्षकों के सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण से करीब 4 वर्षों से जुड़े हुए हैं। वर्तमान में सागर, मध्य प्रदेश में कार्यरत हैं।

सभी चित्र: रुतुजा सिद्दाम: पुणे में विज़ुअल आर्ट पर काम करती हैं। बच्चों के लिए पुस्तक चित्रण और ग्राफिक डिज़ाइन में खास रुचि। इसके अलावा पेंटिंग, इंस्टॉलेशन, फोटोग्राफी आदि में भी रुचि। इनका काम मुख्य रूप से समकालीन घटनाओं और सामाजिक मुद्दों के प्रभाव का प्रतिनिधित्व करता है। भविष्य में एक विज़ुअल आर्टिस्ट के रूप में शैक्षिक विकास के लिए काम करना चाहती हैं।

शौचालय – एक संघर्ष गाथा

प्रियंका कुमारी

फिल्म 'टॉयलेट - एक प्रेम कथा' का नाम तो लगभग सभी ने सुना होगा, पर आज आपके सामने एक शिक्षिका के संघर्ष की ऐसी कहानी पेश की जा रही है जिसे 'शौचालय - एक संघर्ष गाथा' कहा जा सकता है।

पुआल के वो ढेर

इस संघर्ष की शुरुआत होती है मेरी पहली पोस्टिंग से। आज से करीब 15 साल पहले सन् 2007 में मेरी पहली पोस्टिंग बिहार के एक अत्यन्त दूर-दराज़ गाँव के शासकीय प्राथमिक विद्यालय की शिक्षिका के तौर पर हुई थी। पहले दिन बच्चों के साथ काफी अच्छा अनुभव रहा और स्टाफ के लोग भी सकारात्मक थे। पहले दिन ही पता चल गया था कि विद्यालय का शैक्षिक वातावरण काफी कमज़ोर है। खैर, इस बारे में यहाँ चर्चा नहीं करूँगी।

दिन भर विद्यालय में बिताने के बाद अब मुझे 'हल्का' होने की ज़रूरत महसूस हो रही थी। इधर-उधर नज़र दौड़ाई पर कहीं भी ऐसा कुछ दिखाई नहीं दिया। अन्ततः मैंने अपनी सहकर्मी शिक्षिका के पास जाकर धीरे-से कहा, "मुझे कहीं टॉयलेट नज़र नहीं आ रहा। प्लीज़ बताइए कहाँ है।"

वे मेरी तरफ देखकर मुस्कराईं और मुझे कुछ देर रुकने को कहा। ऐसा लगा कि जैसे मैंने उनसे कोई बचकानी बात कह दी हो। मैं मन-ही-मन सोचने लगी कि अजीब महिला है, मेरी मदद करने की बजाय रुकने के लिए बोल रही है। खैर, मैंने जैसे-तैसे इन्तज़ार किया। कुछ मिनटों के बाद उन्होंने मुझसे अपने साथ चलने के लिए कहा। मैं यंत्रवत उनके साथ चलने लगी। पर यह क्या, वे तो मुझे स्कूल के बगल के एक खेत में ले गईं, जहाँ एक छोटा-सा झोपड़ीनुमा घर और पुआल के बड़े-बड़े दो-तीन ढेर लगे हुए थे। इन्हीं पुआल के ढेर की ओट में उन्होंने मुझे बैठ जाने को कहा, ताकि मैं खुद को 'हल्का' कर सकूँ। मुझे ऐसा लग रहा था कि काटो तो खून नहीं। वे लगातार बोले जा रही थीं कि जल्दी-से कर लो, अभी कोई नहीं है। पर मेरा दिमाग तो सुन्न पड़ गया था। मैडम खीझकर खुद ही उस पुआल के पीछे बैठकर 'हल्का' हो लीं। मैंने चारों ओर नज़रें

घुमाकर देखा तो एक तरफ स्कूल का मैदान, दूसरी ओर दूर-दूर तक खुला खेत और दो ओर मुख्य सड़कें जिसमें एक सड़क के किनारे बनी कुछ छुट-पुट झोपड़ियाँ। कोई कैसे इस तरह खुले में बैठ सकता है। अन्ततः मैडम ने कहा, "यहाँ ऐसे ही चलता है, करना है तो करो, नहीं तो चलो वापस।" मैंने किसी तरह अपने आप पर नियंत्रण किया और स्कूल वापस चली आई। तब तक घर से गाड़ी भी मुझे लेने के लिए आ चुकी थी। घर पहुँचते ही मैं बाथरूम की तरफ भागी और चैन की साँस ली। माँ ने पूछा, "कैसा रहा आज का दिन?" मैंने कहा, "कुछ मत पूछो माँ, वहाँ तो टॉयलेट ही नहीं है..." और सारी कहानी उन्हें बताई। फिर पापा ने सुझाव दिया कि इस सम्बन्ध में अपने विद्यालय के प्रभारी से बात करो।

खैर, सारी बातों को भूलते हुए मैं अगले दिन पुनः विद्यालय गई। फिर दोपहर के बाद वही समस्या आ खड़ी हुई। पुनः मैडम से अनुरोध किया कि वे साथ में चलें, क्योंकि अभी छुट्टी होने में काफी वक्त था। जैसे-तैसे सकुचाते हुए मैं भी उस पुआल के पीछे बैठ गई। शर्म और भय से मेरा

बुरा हाल था कि कोई मुझे इस हाल में देख न ले। हड़बड़ी में उठकर कपड़े ठीक कर ही रही थी कि तभी एक छोटा-सा साँप वहाँ से गुज़रा। मैं चिल्ला उठी... पर मैडम हँसने लगीं और बोलीं, "अरे, यह साँप नहीं काटता, ऐसे ही भाग जाएगा।" उनकी इस प्रतिक्रिया से मैं स्तब्ध थी।

विद्यालय लौटने पर मैंने मैडम से चर्चा की, "आपने कभी इस बात के लिए आवाज़ क्यों नहीं उठाई? यह कितनी शर्मनाक बात है कि विद्यालय में एक अदद शौचालय नहीं है और शिक्षक व छात्र खेतों और सड़कों पर शौच करते हैं।" सहकर्मी मैडम ने कोई सन्तुष्ट करने वाला जवाब नहीं दिया।

अगले दिन विद्यालय जाकर मैंने शाला प्रधान से इस बारे में चर्चा करने की हिम्मत जुटाई। उनका व्यक्तित्व रूढ़िवादी मूल्यों को बढ़ावा देने वाला परिलक्षित होता था। किसी भी बात पर जल्दी नहीं बोलते थे और जब बोलते तो उनकी आवाज़ इतनी धीमी और रहस्मयी होती जाती थी कि मुझे उनकी आवाज़ सुनने के लिए अपनी सम्पूर्ण श्रवण शक्ति का प्रयोग करना पड़ता था। फिर भी मैंने उनके सामने अपनी बात रखी। लेकिन उन्होंने मुझे वित्तीय प्रावधानों का हवाला देकर ऐसा समझाया कि मैं उनका मुँह ही देखती रह गई। चूँकि मैं नवनियुक्त शिक्षिका थी और मुझे विद्यालय सम्बन्धी किसी भी प्रकार के वित्तीय प्रावधानों की जानकारी नहीं थी इसलिए मन मसोस कर रह गई।

वह अस्थाई शौचालय

कुछ समय बाद हमारे गाँव के ही एक अन्य शिक्षक से मुलाकात हुई। वे उच्च विद्यालय के प्रधान के पद पर आसीन थे। उन्होंने मेरा हाल-चाल लिया और पूछा, "कोई दिक्कत तो नहीं है न?" फिर क्या था, मैंने तुरन्त ही बेहद संक्षेप में अपनी व्यथा बताई कि विद्यालय में तो शौचालय ही नहीं है! मैंने थोड़ा ही कहा लेकिन उन्होंने बेहतर तरीके से समझा। दो-चार दिन बाद ही मैंने देखा कि मेरे विद्यालय प्रधान टाट की घेराबन्दी कर बीच में दो ईंट रखवाकर एक अस्थायी शौचालय का निर्माण करवा रहे हैं। यह देखकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ और खुशी भी कि कम-से-कम अब पुआल के पीछे खुले में तो नहीं बैठना पड़ेगा। फिर बातों-ही-बातों में पता चला कि उस दिन उच्च विद्यालय के जो सर मिले थे, उन्होंने मेरे विद्यालय प्रधान को इस असुविधाजनक स्थिति के लिए आड़े हाथों लिया था। मैंने मन-ही-मन उन सर का शुक्रिया अदा किया जिनकी वजह से इस घास-फूस से बनी टाट की सुविधा उपलब्ध हो सकी।

अगले कुछ दिन काफी अच्छे से बीते। यह बात दीगर है कि एक ही जगह पर सबके मूत्र त्याग से ज़मीन हमेशा गीली रहती थी। फिर भी यह

सुकून था कि अब कोई हमें असहज स्थिति में नहीं देख सकता। पर यह खुशी भी लम्बे समय तक टिक नहीं सकी। बरसात का मौसम आ चुका था। एक दिन इतनी ज़ोरों की आँधी-बरसात आई कि वह अस्थायी शौचालय धराशाई हो गया। कुछ दिन की मिन्नतों के बाद उसे ठीक करवाया गया। लेकिन फिर एक दिन ऐसा तूफान आया कि टाट का कुछ भाग उड़कर दूर बिखर गया और कुछ भाग वहीं धराशाई हो गया। इस बार विद्यालय प्रधान किसी भी प्रकार का दया-भाव दिखाने के मूड में नहीं थे।

नया ठिकाना

हम फिर से अपने पुराने दस्तूर पर आ गए थे, खुले आकाश के नीचे। धीरे-धीरे मैं भी इस स्थिति को स्वीकारने लगी। हर दिन एक चुनौती होती – अपनी इज़्ज़त और सम्मान को सुरक्षित रखने की। इसी बीच उस खुले मैदान की झोपड़ी में थोड़ा विस्तार कर एक और कमरे को बढ़ाया गया था। पता चला कि उस झोपड़ी वाले की बहू कभी-कभी यहाँ आकर रहेगी और उसके लिए शौचालय की यह अस्थायी व्यवस्था

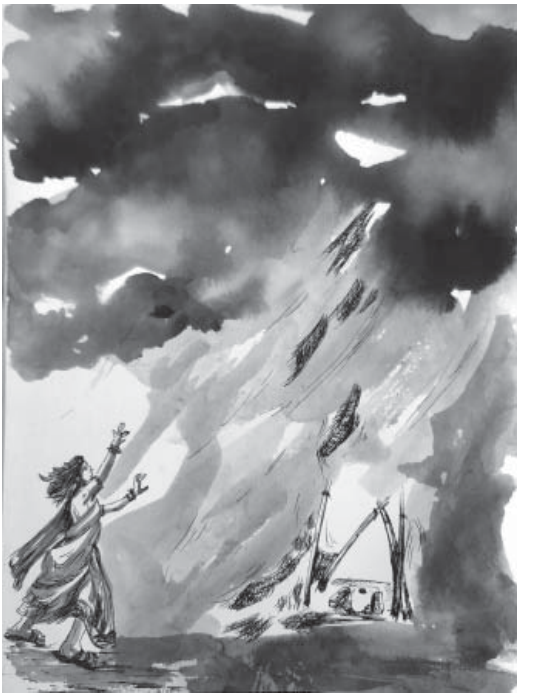

की गई है। यह जानकारी मिलते ही हम बहुत खुश हो गए। हमने अपने इस पड़ोसी से अपनत्व बढ़ाना शुरू किया ताकि हम उस टाट वाले अस्थायी घेरे का उपयोग कर सकें। जब-जब घर पर बहू होती, हमारे लिए भी उस शौचालय का उपयोग आसान और सहज होता। लेकिन जब उस घर के पुरुष वहाँ बैठे होते, तब स्थिति काफी असहज हो जाती थी। कभी-कभी हम दूर से ही देखकर वापस लौट जाते और इन्तज़ार में नज़रें गड़ाए रहते कि कब उस झोपड़ी के पुरुष बाहर की ओर रुख करेंगे। इसी तरह से हमारे दो साल निकल गए।

फिर एक दिन ऐसा हुआ जिसकी कल्पना कर मैं आज भी असहज हो जाती हूँ। क्लास लग चुकी थी और अचानक से मुझे ज़ोरों से खुद को दीर्घ 'हल्का' करने की ज़रूरत महसूस हुई, कितना भी नियंत्रित करने की कोशिश की पर सारी कोशिशें असफल। फिर तेज़ कदमों के साथ मैडम के पास गई और उनको बताया। उन्होंने एक जग की ओर इशारा करते हुए बोला कि इसमें पानी भर लो। वे मुझे एक आम के पेड़ के नीचे ले गईं जो कि विद्यालय के ही करीब था। मैं भय और शर्म से बैठ नहीं पा रही थी पर स्थिति ऐसी बनी कि सारी लोक-लाज छोड़कर बैठना पड़ा। मैडम एक ओर से पर्दा करने की कोशिश में लगी थीं लेकिन बाकी के तीनों ओर का खुलापन मेरे मन में दहशत और घृणा का भाव पैदा कर रहा था। मन अत्यन्त गुस्से और घृणा भाव से भर गया था – यह सिस्टम कैसा है कि विद्यालय में एक अदद शौचालय की व्यवस्था नहीं की जा सकती है।

मैंने उस दिन मन-ही-मन सबको बहुत कोसा। मैडम ने मुझे समझाया कि मैं क्यों इतनी परेशान हो रही हूँ, यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है... यहाँ सब लोग ऐसा ही करते हैं। अत्यन्त गुस्से में मैंने उनसे कहा, "आप यहाँ छह साल से हैं, फिर भी इस असुविधाजनक स्थिति से आपको फर्क नहीं पड़ रहा, इसलिए स्थितियाँ नहीं बदल रही हैं।" खैर, मैडम से बहस करने का फायदा नहीं था क्योंकि वे इस माहौल की आदी थीं।

उम्मीद की नई किरण

जब मैं विद्यालय से जुड़ी थी, उस समय मेरी उम्र 21-22 वर्ष थी। मैंने नोटिस किया था कि विद्यालय प्रधान मेरे साथ बच्चों जैसा व्यवहार करते थे। अगर विद्यालय में कोई मीटिंग होती तो महिला शिक्षकों को अपनी बात रखने या प्रतिनिधित्व करने का मौका नहीं दिया जाता था। सच कहूँ तो उस समय ऐसा लगता था कि मैं विद्यालय में नहीं, घर पर हूँ! लेकिन इस गाँव में दो-तीन बुज़ुर्ग ऐसे थे जो मिडिल पास थे और वे मुझे काफी सम्मान भी देते थे। इन लोगों से मैं

कभी-कभी शिक्षा और विद्यालय की समस्याओं पर बातें कर लिया करती थी। एक दिन एक बुज़ुर्ग ने मुझे बताया, "कोई एनजीओ है जो सभी विद्यालयों में शौचालय बनवाने का कार्य कर रहा है। आप भी एक आवेदन लिखकर दो। मैं बात करता हूँ।" यह सुनते ही मैं तुरन्त कॉपी-पेन लेकर लिखने बैठ गई। फिर मुझे याद आया कि मैं तो सहायक शिक्षिका हूँ, मेरे कहने से कोई कुछ नहीं करेगा। इसके लिए तो विद्यालय प्रधान से ही आवेदन दिलवाना होगा। मैंने उन बुज़ुर्ग से कहा, "आप यही बात हमारे प्रधान को भी बताएँ और समझाएँ कि वे आवेदन दें।" विद्यालय प्रधान से बात की गई और उन्होंने अन्ततः मुझसे ही कहा, "आप इनको एक आवेदन लिखकर दे दीजिए।" लेकिन आवेदन देने के बाद मुझे कहीं से भी किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं हुई। कुछ दिन बेचैनी रही कि आवेदन का क्या हुआ होगा, शौचालय कब बनेगा या बनेगा भी कि नहीं।

शौचालय का बनना और टूटना

बात सन् 2012 की है जब एक दिन अचानक से देखा कि दो मज़दूर काम कर रहे हैं। पता चला कि किसी को विद्यालय में शौचालय बनाने का ठेका मिला है। ठेकेदार ही मज़दूरों को काम पर लगा गया है। मेरी खुशी

का ठिकाना नहीं रहा। मैं हर रोज़ निर्माण कार्य को इतनी बेकरारी से देखती कि लगता जैसे मेरे सपनों का महल बन रहा हो। दो शौचालय बनाए गए। ठेकेदार शौचालय में टाइल्स और गेट लगवाकर और उपयोगिता प्रमाणपत्र लेकर चलता बना।

हम बहुत खुश थे कि अब किसी को भी खुले में शौच के लिए नहीं जाना पड़ेगा। बच्चों को भी गर्व के साथ कहा कि अब से खुले में, खेतों में कोई नहीं जाएगा। लेकिन यह क्या, जब शौचालय में गए तो देखा, अन्दर और बाहर से उसकी कुण्डी ही गायब थी। फिर क्या था, शौचालय में जाते समय एक बच्चा या सहकर्मी शिक्षिका बाहर पहरा दे रहे होते। कुण्डी न रहने का नतीजा यह हुआ कि गाँव के ही कुछ शरारती तत्वों ने टॉयलेट को गन्दगी के ढेर में बदल दिया जिसमें पैर रखना भी दूभर होता था। हम सभी फिर पुरानी स्थिति में आ गए। लेकिन चूँकि मैं प्रेग्नेंसी पीरियड में थी और ऐसे में साफ-सफाई का खास ख्याल रख पाना मेरे लिए चुनौतीपूर्ण हो गया था, इसलिए इस बार मैं बर्दाश्त करने के मूड में नहीं थी। विद्यालय प्रधान को मैंने खुलकर लताड़ा। यहाँ तक कह डाला कि "कल्पना कीजिए, आपके परिवार की बहन-बेटी इस असहज हालत में होती तो भी क्या आप शौचालय के प्रति ऐसे ही उदासीन बने रहते?"

अन्ततः 50-50 रुपए की सहयोग राशि इकट्ठा करके शौचालय की सफाई और कुण्डी लगाने का काम किया गया। अब लगा कि सारे दुखों का अन्त हो गया। डेढ़-दो साल हमने शौचालय का भरपूर इस्तेमाल किया। पर ठेकेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत बना वह शौचालय अपना रंग दिखाने लगा। एक शौचालय तो एकदम अनुपयोगी हो गया, और एक से जैसे-तैसे काम चल रहा था।

सन् 2014 में हमारे विद्यालय में एक नए नियमित शिक्षक स्थानान्तरित होकर आए। उन्होंने आते ही अपना रंग-ढंग दिखाना शुरू किया क्योंकि उन्हें विद्यालय प्रधान का पद चाहिए था। सभी को विद्यालय विकास का सब्ज़बाग दिखाकर ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कीं कि विवश होकर विद्यालय प्रधान ने अपना स्थानान्तरण ले लिया। खैर, हमें तो अपनी ड्यूटी निभाने से मतलब था। परन्तु कुछ ही महीनों बाद नए विद्यालय प्रधान ने विद्यालय के पुराने भवन के ऊपर एक अतिरिक्त कक्ष बनाने का निर्णय ले लिया। इसके लिए सीढ़ियों का निर्माण आवश्यक था। सीढ़ी की जगह बनाने के लिए उन्होंने उपयोग में आ रहे उस शौचालय को तुड़वा दिया। इस बात पर हमने घोर आपत्ति जताई तो उन्होंने आश्वासन दिया कि सीढ़ी के नीचे जो खाली जगह है, वहाँ पर शौचालय का निर्माण करवा दिया जाएगा। यह बात सन् 2016 की

होगी। इस तरह हमारा विद्यालय एक बार फिर शौचालय-विहीन हो गया।

इसी बीच मैं एक बेटी की माँ बन चुकी थी। अब मेरे लिए अपनी और विद्यालय के बच्चों की स्वच्छता का ख्याल रखना अत्यन्त मुश्किल हो रहा था। आखिरकार, एक दिन मैं संक्रमण की चपेट में आ ही गई। असहनीय दर्द के दौर से गुज़रना पड़ा। डॉक्टर ने साफ कह दिया था कि ढेर सारा पानी पिएँ और साफ-सुथरे शौचालय का प्रयोग करें। ये दोनों ही कार्य असम्भव थे, क्योंकि मैं इस डर से पानी ज़्यादा नहीं पीती थी कि बार-बार शौचालय जाने की ज़रूरत महसूस होगी और विद्यालय में तो खुले में जाने के अलावा और कोई विकल्प ही नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं बार-बार संक्रमित हुई। हम सभी ने मिलकर नए विद्यालय प्रधान से शौचालय बनवाने के लिए बहुत बोला लेकिन परिणाम शून्य रहा। फिर एक दिन पता चला कि उनका प्रमोशन हो गया है और वे दूसरे विद्यालय में स्थानान्तरित हो गए हैं।

सन् 2017 में अब विद्यालय प्रधान का प्रभार एक मैडम को मिल गया। ये वही मैडम थीं जो पहली बार मुझे शौचालय के लिए पुआल के पीछे ले गई थीं। उन मैडम के प्रधान बनने पर मैं बहुत खुश हुई और लगा कि अब तो ज़रूर इस समस्या का अन्त होगा। आखिर वे खुद भी एक औरत हैं। लेकिन जब मैंने उनसे शौचालय निर्माण को लेकर दो-तीन बार चर्चा की तो मेरा यह भ्रम टूट गया। एक दिन उन्होंने खीझकर जवाब दिया, "इतना ही आसान होता तो बाकी प्रधान लोग नहीं बनवा देते।" मैं उनका मुँह ही देखती रह गई। मुझे भी गुस्सा आ गया और मैंने कहा, "ठीक है, आप नहीं बनवाएँगी तो मैं अधिकारियों से सम्पर्क करूँगी।" इस पर उन्होंने कहा, "मेरे सामने ज़्यादा अँग्रेज़ी नहीं चलेगी, जो करना है करो। इतना ही दम था तो बाकी लोगों के समय क्यों नहीं बनवा लिया?" मैडम की बात से मैं अन्दर तक टूट गई थी। कुछ महीने ऐसे ही बीते। छुट्टी के बाद विद्यालय की सीढ़ियों के नीचे ही छिपते-छिपाते जैसे-तैसे खुद को 'हल्का' कर लिया करते थे।

स्वच्छता महाअभियान का हश्र

इसी बीच सरकार द्वारा स्वच्छता का एक महाअभियान शुरू किया गया – सभी घरों में शौचालय की सुविधा उपलब्ध कराने और खुले में शौच करने पर रोक लगाने के लिए। हम सभी शिक्षकों को भी इस अभियान में ज़िम्मेदारी दी गई। हमें बीडीओ (ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर) के वॉट्सएप ग्रुप में भी शामिल किया गया। हमने घर-घर जाकर सर्वे किया और लोगों को खुले में शौच करने के दुष्परिणामों के बारे में बताया। परन्तु

मन-ही-मन मैं सोच रही थी कि क्या मैं इस योग्य हूँ कि लोगों से बोल सकूँ कि खुले में शौच न करें जबकि मेरे विद्यालय के बच्चे और शिक्षक खुले में शौच करने को मजबूर हैं।

यह बात शायद सन् 2017 की होगी जब मैंने एक दिन हिम्मत करके बीडीओ साहब वाले वॉट्सएप ग्रुप में अपने विद्यालय के फोटो डालकर लिखा कि यह एक ऐसा स्कूल है जहाँ के शिक्षक घर-घर जाकर लोगों को जागरूक कर रहे हैं कि खुले में शौच न करें, पर विद्यालय के सभी शिक्षक/शिक्षिका और बच्चे खुले में शौच करने जाते हैं। मैंने मैसेज तो सार्वजनिक रूप से कर दिया पर मन-ही-मन डर भी लग रहा था कि पता नहीं क्या प्रतिक्रिया होगी। बीडीओ साहब ने रिप्लाई किया – विद्यालय के प्रधान का मोबाइल नम्बर भेजिए। मेरी तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैंने तुरन्त पुराने और वर्तमान, दोनों प्रधानों का नम्बर साझा कर दिया। आगे क्या बात हुई, मुझे कुछ भी पता नहीं चला। पर मुझे इतना आश्वासन दिया गया कि अब जल्द ही शौचालय बन जाएगा। मुझे लगा कि अब तो शौचालय बनने से कोई नहीं रोक सकता।

पर यह क्या, फिर कुछ महीने बीत गए, शौचालय अब तक नहीं बना और न ही इस बारे में कोई खबर मिली। मैडम भी सकारात्मक नहीं थीं इसलिए उनसे कुछ पूछना बेवजह की लड़ाई को आमंत्रण देना था। खैर, हिम्मत करके एक दिन बीडीओ साहब को निजी तौर पर मैसेज किया और कहा, "सर, अभी तक शौचालय नहीं बना। कृपा करके कुछ दया-दृष्टि कीजिए।" इस पर बीडीओ साहब ने आश्चर्य व्यक्त किया, "क्या, अभी तक शौचालय नहीं बना? अच्छा, मैं बात करता हूँ प्रधान से। पुनः उनका नम्बर भेज दीजिए।" अगले दिन विद्यालय गई तो मैडम गुस्से में थीं। उनके चेहरे के भाव मुझे संकेत दे रहे थे कि जैसे बीडीओ साहब से बात करके मैंने गलती कर दी हो। शायद बीडीओ साहब ने उनको फटकार लगाई थी।

इसी बीच पता चला कि हमारा विद्यालय जिस प्रखण्ड में है, उसे ओडीएफ (ओपन डिफिकेशन फ्री, खुले में शोच-मुक्त) घोषित कर दिया गया है और बीडीओ साहब को उनके प्रयासों के लिए सम्मानित किया जाएगा। यह खबर सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। क्योंकि तब तक मैं जान चुकी थी कि बहुत-से ऐसे विद्यालय हैं जहाँ शौचालय की सुविधा नगण्य है या जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। फिर जिस प्रखण्ड के विद्यालय के शिक्षक और छात्र खुले में शौच करने जाते हों, वह ओडीएफ कैसे घोषित हो सकता है। मन अत्यन्त दुखी हो गया था। सभी चीज़ों से विश्वास टूटने लगा था। अन्ततः मैंने हार मान ली।

फेसबुक, पत्रकार व शिक्षक संघ

अब तक फेसबुक चलन में आ चुका था। मुझे महसूस हुआ कि हम सोशल प्लेटफॉर्म का उपयोग सिर्फ एंटरटेनमेंट के लिए ही नहीं बल्कि अर्थपूर्ण कार्यों में मदद लेने के लिए भी कर सकते हैं। मेरी मित्र सूची में एक पत्रकार थे जो उस समय एक नामी-गिरामी दैनिक अखबार के लिए काम करते थे। मैंने उनके समक्ष अपनी वेदना व्यक्त की और प्रश्न रखा – क्या आपको नहीं लगता है कि जिस विद्यालय में तीन महिला शिक्षिकाएँ और कुछ सौ लड़कियाँ हों, वहाँ एक अदद शौचालय का निर्माण अनिवार्य है? अगर कभी कोई अनहोनी घट जाती है तब फिर अफसोस के सिवा कुछ हाथ में नहीं रहेगा। चूँकि उस समय ज़िला मुख्यालय तक पहुँच होना बहुत बड़ी बात होती थी, इसलिए मुझे लगा कि अपने विद्यालय की समस्या का निदान शायद मीडिया के माध्यम से करवा सकूँ।

वह पत्रकार एक भले और संवेदनशील इन्सान थे। अगले ही दिन वे 38 कि.मी. की यात्रा कर मेरे विद्यालय पहुँचे और वहाँ की वास्तविक स्थिति का अवलोकन किया। जो भी सूचनाएँ उन्हें चाहिए थीं, मैंने उपलब्ध करवाईं। मुझे अपने स्टाफ के लोगों की प्रतिक्रिया से थोड़ा-सा डर भी लग रहा था, इसलिए मैंने पत्रकार महोदय से अनुरोध किया कि वे मेरा नाम जाहिर न करें। विद्यालय में सभी लोग अचम्भित थे कि इस सुदूर देहात में तो शिक्षा अधिकारी तक नहीं आते, यह पत्रकार कैसे आ गया। मैंने भी अनभिज्ञता जाहिर कर दी।

अगली सुबह का अखबार देखा तो प्रमुखता से विद्यालय की तस्वीर के साथ शौचालय की समस्या को उठाया गया था जिसे पढ़कर मैं काफी उत्साहित हुई। विद्यालय में भी सबको दिखाया। लेकिन इस खबर से प्रधान मैडम रुष्ट दिखीं और बोलने लगीं, "इस सबसे कुछ नहीं होता।"

फिर कुछ समय बीत गया। कहीं से कोई खबर नहीं मिली। मन एक बार फिर निराशाओं से भरने लगा। इसी बीच एक दिन किसी काम के सिलसिले में बीडीओ साहब का मैसेज आया। मैंने उनसे कहा, "सर, आपने आखिर मेरा काम नहीं करवाया।" सर ने पूछा, "कौन-सा काम, शौचालय निर्माण का!" मैंने कहा, "हाँ सर, अभी तक शौचालय नहीं बना।" उन्होंने कहा, "आपकी विद्यालय प्रधान ने तो पिछली बार मुझसे कहा था कि शौचालय का निर्माण कार्य प्रगति पर है। मैंने बहुत डाँट लगाई थी आपकी प्रधान को। अब तो मेरा स्थानान्तरण हो गया है, फिर भी मैं आपकी विद्यालय प्रधान से बात करूँगा।"

यह सुनकर मुझे धक्का लगा कि इतना बड़ा झूठ बोला गया है। आखिर क्या समस्या है एक शौचालय निर्माण

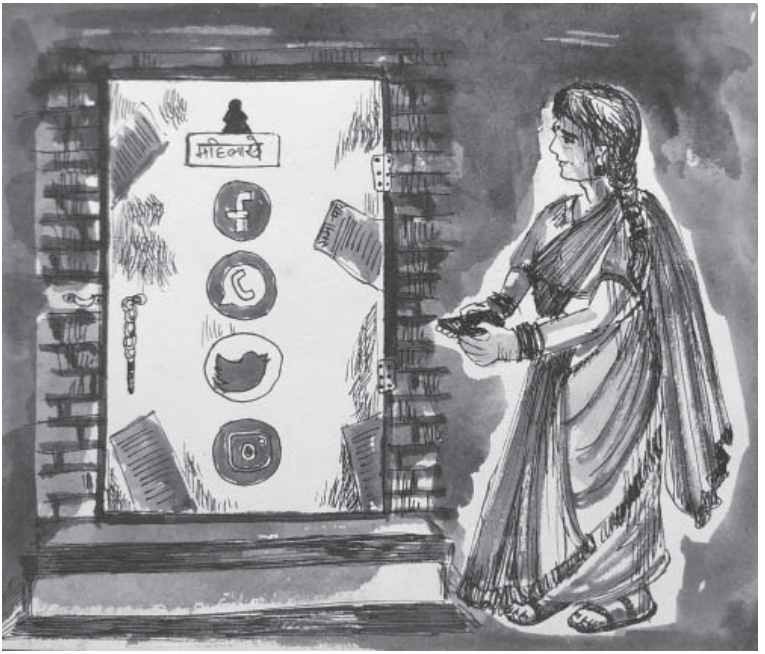

में! काश, मैं प्रधान होती तो इतना परेशान नहीं होना पड़ता। मेरी छात्राएँ भी शौचालय के नाम पर कक्षा के बीच से ही छुट्टी लेकर घर चली जाती थीं। मेरे पास कोई विकल्प भी नहीं था कि मैं उन्हें पूरे समय के लिए विद्यालय में रोक पाऊँ। एक अदद शौचालय की कमी कितनी सारी चीज़ें प्रभावित कर रही थी। इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था।

कुछ महीने फिर बीते। 2017 का साल भी बीतने को था। एक दिन फेसबुक के माध्यम से ही एक शिक्षक संघ के ज़िलाध्यक्ष से मेरी जान-पहचान हुई। शैक्षिक मुद्दों पर तर्क-वितर्क के दौरान मैंने अपने विद्यालय के शौचालय की समस्या उनके सामने रखी और अनुरोध किया कि वे मेरी मदद करें। उन्होंने मुझसे ज़िला कार्यक्रम पदाधिकारी, सर्व शिक्षा अभियान के नाम पर एक आवेदन लिखने को कहा और इसकी प्रतिलिपि संघ के नाम से भी देने को कहा। मैंने अपने सारे प्रयासों और चिन्ताओं को संक्षेप में समेटते हुए सारी बातों को उस आवेदन में समाहित किया और वह आवेदन ज़िलाध्यक्ष के हाथों ज़िला कार्यक्रम पदाधिकारी के समक्ष सीधे तौर पर पेश कर, उन्हें समस्याओं से अवगत कराया। संयोग

से उस समय ज़िलों में मॉडल शौचालयों का निर्माण होना था जिसकी सूची स्वीकृति के लिए पटना भेजी जानी थी। मेरे विद्यालय का नाम भी इस सूची में भेज दिया गया।

आखिरकार मेहनत रंग लाई

सन् 2018 शुरू हो चुका था। कुछ दिनों बाद मैंने एक पत्र देखा जिसमें ज़िले के विभिन्न प्रखण्डों में शौचालय निर्माण के लिए विद्यालयों का नाम था। उन सभी विद्यालय के प्रधानों को इससे सम्बन्धित एक मीटिंग में भी भाग लेना था। सौभाग्यवश, मेरे विद्यालय का नाम भी इस सूची में शामिल था। मैंने विद्यालय की अन्य शिक्षिका को यह सूचना दी, "मेहनत रंग लाई। हमारे विद्यालय में अब बहुत बढ़िया शौचालय बनेगा।" वे भी बहुत खुश हुईं। मैंने अपनी विद्यालय प्रधान को भी इस सम्बन्ध में सूचित किया। इस पर वे भड़क उठीं और बोलीं, "तुम क्रेडिट लेना चाह रही हो, ये शौचालय मैंने पैसे खर्च करके पास करवाए हैं।" उनकी बातें सुनकर हम सभी एक साथ हँसने लगे। हमने कहा, "कोई बात नहीं, क्रेडिट आप रख लो। हमें बस शौचालय बनवाकर दे दो।" मैडम वहाँ से अपना-सा मुँह बनाकर चल दीं। कुछ ही दिनों बाद निर्माण कार्य शुरू हो गया और हमारे विद्यालय में एक बहुत ही सलीके का शौचालय बनाया गया जिसमें लड़के-लड़कियों का अलग-अलग शौचालय था। सभी में सफेद रंग की टाइल्स लगीं। जब शौचालय बनकर तैयार हो गया तो मेरी सहयोगी शिक्षिका ने मुझे धन्यवाद कहा और शौचालय के सामने खड़े होकर हमने साथ में फोटो खिंचवाई। सच कहूँ तो यह तस्वीर खिंचवाने में जो मज़ा आया वो किसी खूबसूरत मीनार के सामने खिंचवाने में भी नहीं आता। ग्यारह साल के अथक प्रयास के बाद बना यह शौचालय अभी तक तो चालू हालत में है!

प्रियंका कुमारी: पेशे से शिक्षिका, स्वभाव से सामाजिक कार्यकर्ता और हृदय से लेखक हैं। पिछले 14 वर्षों से प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य। वर्तमान में, मध्य विद्यालय मलहटोल, सीतामढ़ी, बिहार में सहायक शिक्षिका हैं। कई काव्य रचनाएँ प्रकाशित। महिला साक्षरता, महिलाओं के डिजिटल सशक्तिकरण, गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करने व बच्चों से मित्रता करने में विशेष रुचि।

सभी चित्र: स्वाति कुमारी: बिहार के एक विस्थापित परिवार में जन्मीं स्वाति ने दिल्ली के कॉलेज ऑफ आर्ट से पेंटिंग में बी.एफ.ए. और अंबेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में एम.ए. किया है। उनकी खोज इस बात के इर्द-गिर्द घूमती है कि शरीर और स्थान कैसे कार्य करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, बातचीत करते हैं और एक-दूसरे को प्रतिक्रिया देते हैं।

अशोक की कहानी

कृष्ण कुमार

अशोक पढ़ना चाहता था। उसके परिवार में कभी कोई स्कूल नहीं गया था। पिता ज़मीन के छोटे-से टुकड़े पर खेती करते थे, अनपढ़ थे। अशोक ने कई बार ज़िद की, माँ को समझाया और अन्त में पिता मान गए कि उसे पास के कस्बे के प्राइमरी स्कूल में भर्ती करा देंगे।

पहले दर्जे में हिन्दी के अन्तर्गत अध्यापक ने वर्णमाला सिखाई। एक-एक अक्षर की आवाज़ हफ्तों तक रटाई, अक्षरों की आकृति बनाना सिखाया। जिन बच्चों को दिक्कत आती थी, उनका हाथ पकड़कर सिखाया। स्कूल में एक छोटा-सा ब्लैकबोर्ड था - खूब घिसा हुआ, चॉक के बारीक कणों से इस कदर ढका हुआ कि लिखाई देखने के लिए सिर की नसों का सारा ज़ोर पुतली पर केन्द्रित करना होता था। यह ब्लैकबोर्ड अगस्त से अक्टूबर तक वर्णमाला की आकृतियों से ढका रहा। बच्चे एक-एक अक्षर की आकृति बीसियों बार उतारते। इस तरह अन्त में अशोक ने सारी हिन्दी वर्णमाला सीख ली।

एक अध्यापिका ने पाठ्यपुस्तक की तरफ ध्यान दिलाया जिसमें हर अक्षर के पास एक शब्द लिखा था और एक चित्र बना था। 'क' के पास लिखा था 'कबूतर'। अशोक शुरू से जानता था कि 'क' का मतलब होता है 'कबूतर'। इसलिए जब बहनजी ने अक्षर जोड़कर 'कबूतर' पढ़ना सिखाना चाहा तो अशोक बहुत खुश हुआ। पर उसे यह नहीं समझ में आया कि दरअसल, बहनजी के लिए

'क', 'बू', 'त' और 'र' का कुल योग 'कबूतर' है। अशोक के दृष्टिकोण से 'क' 'कबूतर' था। बहनजी के पास इतना समय नहीं था कि अशोक का दृष्टिकोण समझें। 'अशोक का भी कोई दृष्टिकोण है' - यह बात वे जानती थीं या नहीं, मैं कह नहीं सकता। बहरहाल, उन्होंने सोचा कि अशोक 'क' के साथ लिखे शब्द को देखकर 'कबूतर' कह रहा है यानी वह पढ़ना सीखने लगा है।

इसी तरह अशोक ने बाकी सब अक्षरों के साथ लिखे शब्दों को पढ़ना सीख लिया। अक्षरों की आकृतियाँ स्लेट और कॉपी पर उतारना तो वह पहले से ही सीख चुका था। पहले दर्जे का अन्त होते-होते वह अपनी प्रगति से काफी खुश था। जब वह दूसरी में आया और कक्षा में उससे किताब पढ़ने को कहा गया तो वह इस तरह बोला-

"'कबूतर' का 'क', 'मटर' का 'म', 'लंगूर' का 'ल', क-म-ला" हर बार उसे इस तरह पढ़ते देखकर अध्यापिका कुछ नाराज़ हुईं। अशोक के हर प्रयास के बाद अध्यापिका उससे कहतीं, "दूसरे बच्चों को ध्यान-से सुनो, उनकी तरह पढ़ो।" अशोक दूसरे बच्चों को बहुत ध्यान-से सुनता था पर यह समझने में असमर्थ रहता कि वह कहाँ गलती कर रहा है। उसे लगता कि दूसरे ठीक उसकी तरह पढ़ रहे हैं। यही शब्द वे पढ़कर सुना रहे हैं। फिर बहनजी उससे क्यों नाराज़ हैं? सौभाग्यवश बहनजी और भी कुछ बच्चों पर खीझती थीं, इसलिए अशोक अपने को एकदम अकेला नहीं पाता था। किसी तरह उसने दूसरी कक्षा के सारे दिन काट लिए। धीरे-धीरे उसकी 'क' से 'कबूतर' कहने की आदत भी कम हो गई। अब वह इस तरह पढ़ता था-

'ग' पे 'उ' की मात्रा 'गु'

'ल' पे 'आ' की मात्रा 'ला'

'ब'

'क' पे 'आ' की मात्रा 'का'

'फ' पे बड़े 'ऊ' की मात्रा 'फू'

'ल'

गु-ला-ब का फू-ल

बहनजी उसे कभी-कभार ही पढ़ने को कहतीं, अक्सर उनके पास की टाटपट्टी पर बैठे बच्चे ही पूरा पाठ पढ़ देते। पर अशोक इस बात से उदास नहीं था। उसने एक पूरी कविता याद कर ली थी। दूसरी कक्षा के अन्तिम दिनों में जब किताब दोहराते वक्त इस कविता को पढ़ने का नम्बर आया तो अशोक ने बगैर सही पेज खोले पूरी कविता पढ़कर सुना दी। बहनजी उससे गुस्सा थीं कि उसने सही पेज क्यों नहीं खोला। अशोक खुश था कि वह बिना किताब देखे पढ़ने लगा है। उसके और बहनजी के दृष्टिकोणों का विरोध तीखा होता जा रहा था।

आखिरकार, तीसरी कक्षा शुरू

हुई। अशोक के गाँव के कई बच्चे स्कूल आना छोड़ चुके थे। उस पर भी दबाव पड़ा, पर वह अड़ा रहा। वह चाहता था कि जल्दी-जल्दी स्कूल खत्म करके पैसे कमाए। बहनजी कई बार कक्षा में बता चुकी थीं कि जो बच्चे स्कूल में आगे बढ़ते रहेंगे, वे खूब बड़े आदमी बनेंगे और पैसे कमाएँगे।

पर तीसरी कक्षा की शुरुआत से ही विघ्न पड़ने लगे। 'भूगोल' नाम का एक नया विषय शुरू हुआ। अशोक को भूगोल की किताब में कुछ पल्ले नहीं पड़ा। पहले पेज पर लिखा था, 'हमारा ज़िला ऊबड़-खाबड़ और पथरीला है। ...यह कर्क रेखा से कुछ ऊपर स्थित है। ...इसकी भू-रचना पठारी प्रकार की है।' कक्षा के कई बच्चे यह फर्राटे से पढ़ना सीख चुके थे। वे खड़े होकर पढ़ते, फिर कॉपी में उतारते। अशोक धीरे-धीरे पढ़ने की कोशिश करता तो बहनजी अधीर हो उठतीं। यही हालत एक और नए विषय 'विज्ञान' की घण्टी में हुई। महीने भर में बहनजी अशोक से इतना परेशान हो गईं कि उन्होंने उससे कुछ भी कहना छोड़ दिया। उनकी अधीरता और नाराज़गी का धागा, जिससे अशोक अभी तक बँधा था, उदासीनता में बदल गया। अशोक को लगा कि बहनजी को अब उससे कोई मतलब नहीं है। दिवाली की छुट्टी के बाद वह वापस स्कूल नहीं गया।

***

कुछ वर्ष बाद ज़िले में एक सर्वेक्षण हुआ। प्रान्तीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद की ओर से दो सर्वेक्षक लम्बे-लम्बे फॉर्म लेकर आए। सर्वेक्षण का उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्राथमिक शिक्षा में 'ड्रॉप-आउट' का दर इतना ऊँचा क्यों है। सर्वेक्षकों ने कई गाँव चुने और वहाँ जाकर माता-पिताओं के इंटरव्यू लिए। इस तरह स्कूल छोड़ने वाले सैकड़ों बच्चों के आँकड़े उनके शैक्षिक अनुसंधान की पकड़ में आ गए।

शिक्षा का कोई सर्वेक्षण हो रहा है, यह मुझे मालूम था। जब मुझे सर्वेक्षण का ठीक-ठीक उद्देश्य मालूम हुआ तो मैं आलस त्यागकर, अपना कौतूहल लिए सर्वेक्षकों से मिलने जा पहुँचा। उनका काम पूरा हो चुका था और वे जाने की जल्दी में थे। मैंने आग्रह किया कि वे मुझे अशोक की 'डेटा-शीट' दिखा दें। मैं यह जानने को बेहद उत्सुक था कि देश के आँकड़ों में अशोक का 'केस' किस तरह प्रस्तुत होगा। सैकड़ों बच्चों के पिताओं की 'डेटा-शीटों' में से एक को ढूँढ़ निकालने में सर्वेक्षक-बन्धु आनाकानी कर रहे थे। मैंने बातचीत के दौरान अपनी हैसियत और डिग्री का ज़िक्र किया तो वे तैयार हो गए। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब अशोक के पिता की 'डेटा-शीट' मिली तो उसे पढ़कर यह साफ निष्कर्ष निकलता था कि अशोक ने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में, अपने पिता का हाथ बँटाने के लिए पढ़ना छोड़ा। सर्वेक्षण के समूचे विश्लेषण में अशोक की गणना 'परिवार की आर्थिक स्थिति' से प्रभावित 'ड्रॉप-आउट' बच्चों में की गई। अशोक एक ग्रामीण बाल श्रमिक घोषित हुआ।

मेरी आँखों में आँसू देखकर सर्वेक्षक-बन्धु कुछ घबरा गए। वे बोले, "क्या यह बच्चा आपके रिश्ते में आता है?" मैंने कहा, "नहीं, पर मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे लगता है कि आप उसका केस ठीक से समझ नहीं पाए हैं।" सर्वेक्षक ने कहा, "अब एक-एक केस को कहाँ तक समझा जाए।" फिर कुछ बात बदलकर वे बोले, "आप तो दिल्ली में रहते हैं, नई शिक्षा नीति कब से लागू होने वाली है?"

कृष्ण कुमार: प्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं लेखक। शिक्षा के मुद्दों पर सतत चिन्तन एवं लेखन। दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा के प्रोफेसर और एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक रह चुके हैं। भारत और पाकिस्तान में शिक्षा पर उनकी दो पुस्तकें, *मेरा देश तुम्हारा देश* और *शान्ति का समर* चर्चित रही हैं। उनकी हाल की पुस्तकों में *शिक्षा और ज्ञान*, *चूड़ी बाज़ार में लड़की* और बच्चों के लिए *पूड़ियों की गठरी* शामिल हैं।

सभी चित्र: उबिता लीला उन्नी: डिज़ाइनर व चित्रकार हैं। इन्हें बच्चों और बच्चों की कहानियों के साथ काम करना बहुत पसन्द है। कुछ महीने *एकलव्य* के डिज़ाइन समूह के साथ फैलोशिप के तहत काम किया है।

यह लेख सन् 2008 में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पुस्तक *पढ़ने की दहलीज़* से लिया गया है। सम्पादक - लता पाण्डे।

सिर्फ मेरिट की बात करने से बात नहीं बनेगी

अमन मदान के साथ बातचीत

'मेरिट' शब्द का आजकल कुछ ज़्यादा ही इस्तेमाल किया जाने लगा है और इसको एक अलग दर्जा मिल गया है। इस साक्षात्कार में अमन मदान अपने समाजशास्त्रीय तर्कों के माध्यम से मेरिट के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं और मेरिटोक्रेसी के मिथक पर सवाल उठाते हैं। डेटा के आधार पर उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मेरिट असल में भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत, वर्गीय और जेंडर आधारित असमानताओं के साथ गहरे तौर पर जुड़ी हुई है। अगर इसी शब्द को उलट दें तो उनके तर्क में एक मेरिट यानी दम दिखाई देता है!

? **विवेक वेलांकी:** हमारे देश में आरक्षण और मेरिट को लेकर आजकल काफी गहमागहमी है। मध्यमवर्ग और जनसंचार माध्यमों में मेरिट को एक ऐसे 'पावन सिद्धान्त' का दर्जा दे दिया गया है जिसकी हर सूरत में उपासना की जाती है; एक ऐसी चीज़ जो अपने आप में पावन है और उस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। मगर आपका कहना है कि हमें इस सवाल पर ज़्यादा आलोचनात्मक ढंग से भी सोचना चाहिए। आपके हिसाब से यह इतनी महत्वपूर्ण बात क्यों है?

अमन मदान: सबसे पहले मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरिट को संजीदगी से लेना बहुत ज़रूरी है। हमारे यहाँ इतने सारे लोग इसे इतना ज़्यादा महत्व देते हैं, यह हमारे मौजूदा समाज के बारे में काफी कुछ कह जाता है। यह एक समाज है जो जन्म से हमारी उपलब्धि या सफलताओं पर ज़्यादा ज़ोर देता है। यह समाज व्यक्तिगत परिश्रम, व्यक्तिगत चेष्टा पर ज़ोर देता है। मगर पीछे लौटकर मेरिट को एक अलग दृष्टि से देखना इसलिए ज़रूरी है क्योंकि हमारे यहाँ जिस मेरिट की वकालत की जा रही है, वह केवल व्यक्तिगत परिश्रम से हासिल नहीं होती। व्यवहार के धरातल पर हम देखते हैं कि हमारे इतिहास का एक बहुत बड़ा हिस्सा – यानी हमारे परिवार की पृष्ठभूमि क्या है, वह किन स्थितियों से जूझ रहा है और किन अन्यायों का सामना कर रहा है – मेरिट की परिभाषा को बहुत गम्भीर रूप से प्रभावित करता है। हम मेरिट की धारणा को पूरा महत्व तो देते हैं, मगर हमें इसके

यथार्थ को भी देखना चाहिए। हम एक ऐसा समाज बनाना चाहते हैं जो मूल रूप से मेरिट पर आधारित हो मगर व्यवहार के धरातल पर हम अभी उस स्थिति में नहीं पहुँचे हैं।

? **विवेक वेलांकी:** आपने भारत और दुनिया भर में मेरिटोक्रेसी के उदय का भी अध्ययन किया है। यह तुलनात्मक रूप से नई अवधारणा है। आप लिखते हैं कि यह एक ऐसी व्यवस्था से पैदा होती है जिसमें अवसर और संसाधन ऐतिहासिक रूप से इस आधार पर निर्धारित होते रहे हैं कि आप कहाँ पैदा हुए हैं। क्या आप इस बारे में और रोशनी डालना चाहेंगे?

अमन मदान: तुलनात्मक रूप से कुछ ही समय पहले तक दुनिया के ज़्यादातर भागों में एक ऐसी व्यवस्था हावी रही है जिसमें व्यक्ति के परिवार की पृष्ठभूमि इस बात को बहुत गहरे तौर पर प्रभावित करती थी कि हम क्या करेंगे। लिहाज़ा, अगर आप किसी जौहरी के घर में पैदा हुए हैं तो सम्भावना यही है कि आप भी जौहरी का ही व्यवसाय करेंगे। अगर आप किसी किसान परिवार में पैदा हुए हैं तो सम्भवतः आप किसान ही बनेंगे। मगर धीरे-धीरे और बड़े कष्टपूर्ण ढंग से हम एक ऐसे समाज में तब्दील होते जा रहे हैं जहाँ केवल आपका परिवार ही यह तय नहीं कर सकता

कि मैं क्या बन सकता हूँ, मैं क्या कामना कर सकता हूँ या किन चीज़ों को अच्छा अथवा बुरा मान सकता हूँ। हम धीरे-धीरे पुरानी व्यवस्था से तो दूर जा रहे हैं, मगर इस प्रक्रिया में बहुत सारी समस्याएँ हैं। इन समस्याओं में, मिसाल के तौर पर, एक समस्या यह है कि इस देश में कितने रोज़गार हैं जो मेरिट के आधार पर उपलब्ध हैं। वास्तव में ऐसी नौकरियों की संख्या बहुत ही कम है। हम जिन नौकरियों की दिन-रात दुहाई देते हैं, वे प्रतिस्पर्धी परिक्षाओं के ज़रिए हासिल होती हैं। इन्हें व्हाइट कॉलर या अभिजात्य रोज़गार कहा जा सकता है। हमारे देश में ऐसी नौकरियों की संख्या कुल रोज़गारों में 20 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं होगी। आप देख सकते हैं कि यह कितनी छोटी संख्या है। ज़्यादातर लोगों को दूसरे काम करने पड़ते हैं और वे दूसरे काम मुख्य रूप से परिवार के सम्बन्धों और जान-पहचान से हासिल होते हैं।

दूसरी तरफ, जब हम इस बारे में विचार करते हैं कि ये नौकरियाँ किन लोगों को मिलती हैं, कि हमारी शिक्षा व्यवस्था कैसे काम करती है और कैसे वह कुछ लोगों को खास तरह की नौकरियों में पहुँचा देती है, तो पता चलता है कि इसमें सामाजिक रूप से रची गई बेहद असमानता आधारित प्रक्रियाएँ बहुत अहम भूमिका निभा रही हैं। अगर आप किसी मध्यवर्गीय नौकरीपेशा परिवार में पैदा हुए हैं तो आपके जीवन में आगे बढ़ने की सम्भावनाएँ किसी ऐसे व्यक्ति के मुकाबले बहुत भिन्न होंगी जो ग्रामीण किसान श्रमिक के परिवार में पैदा हुआ है। जब हम इन पहलुओं को समझना शुरू कर देते हैं तो यह बात साफ होने लगती है कि केवल मेरिट की बात करने से पूरी बात स्पष्ट नहीं होगी।

जब मेरिट की बात की जाती है तो हम मानकर चलते हैं कि हम व्यक्तिगत प्रयास के बारे में बात कर रहे हैं। मगर सवाल यह है कि हमारे प्रयास किस हद तक वाकई व्यक्तिगत चेष्टाओं पर आधारित हैं और किस हद तक हमारी सामाजिक पृष्ठभूमि से तय होते हैं। हमें इस बारे में सचेत रहना चाहिए। हमें एक ऐसी स्थिति की ओर बढ़ना है जहाँ मिलने वाले पुरस्कार और प्रेरणाएँ समाज में हमारी सहभागिता के एवज में हों। ये पुरस्कार अपने आप में कुछ नहीं होते। आम तौर पर वे इस बात को दर्शाते हैं कि समाज में किस तरह के व्यवहारों को प्रोत्साहित किया जाता है। यह प्रोत्साहन इस बात पर आधारित नहीं होना चाहिए कि आप किस परिवार में पैदा हुए हैं बल्कि आपकी व्यक्तिगत क्षमताओं पर आधारित होना चाहिए; या इस आधार पर कि आप कितने सक्षम हैं, अपने प्रयासों, अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं से आप क्या कर सकते हैं।

? **विवेक वेलांकी:** हमारे देश में मेरिटोक्रेसी के पीछे जाति सबसे निर्णायक तत्व रही है। जाति एक मुख्य आधार है जो लोगों को या तो विभिन्न अवसर प्रदान करती है या उनका निषेध करती है। हमारे देश में यह अवधारणा कितनी पुरानी है और हमारे लिए इसका क्या महत्व है?

अमन मदान: हमारे यहाँ इस बारे में एक मिश्रित समझदारी रही है कि यह समाज पुरस्कारों का वितरण किस तरह करता है और खास तरह के कामों के लिए लोगों का चयन कैसे किया जाता है। इसमें परिवार, जाति और क्षमता, सभी का मिश्रण अपनी भूमिका अदा करता रहा है। उदाहरण के लिए, अगर किसी राजा को सेनापति का चुनाव करना हो तो इस चुनाव में उम्मीदवारों के परिवार की पृष्ठभूमि और क्षमता, दोनों का महत्व होता है। इस व्यवस्था के तहत हमारे यहाँ इस बात पर औपचारिक आग्रह कभी नहीं रहा कि केवल मेरिट या क्षमता को ही गिना जाना चाहिए। मध्यकाल से लेकर अभी तक हमारे पास असंख्य दस्तावेज़ हैं जो हमें बताते हैं कि राजे-रजवाड़े लोगों को अलग-अलग पदों पर किस तरह नियुक्त करते थे। यहाँ तक कि औपचारिक तौर पर भी बहुधा यह मान लिया जाता था कि किसी खास पद के लिए किसी खास समुदाय के व्यक्तियों को ही चुना जाएगा। एक प्रकार से यह समाज में सीमाएँ तय करने की परम्परा थी।

एक औपचारिक व्यवस्था में हम खुद को इस व्यवस्था से दूर जाते हुए देखते हैं। इस प्रसंग में एक बड़ा बदलाव तब आता है जब अँग्रेज़ यहाँ दाखिल होते हैं। यह गौर करने की बात है कि अँग्रेज़ों के यहाँ भी आंशिक रूप से सीमाबन्दी की ऐसी ही व्यवस्था प्रचलित थी। दूसरी तरफ उनके यहाँ आंशिक खुलेपन की व्यवस्था भी थी। वे एक के बाद एक कई राजनीतिक आरै सामाजिक क्रान्तियों से गुज़रते हुए जब उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारत में मज़बूती से दाखिल हुए, तब वे एक हद तक विकसित समाज की ख्याति प्राप्त कर चुके थे, और लिहाज़ा वहाँ खुलेपन के प्रति एक खास तरह की प्रतिबद्धता दिखाई देने लगी थी। यह एक मिली-जुली कहानी है। भारत में वे पूरी तरह खुलेपन को बढ़ावा नहीं देते, बल्कि एक ऐसी स्कूली व्यवस्था विकसित करते हैं जो समस्यामूलक होने के बावजूद अब तक की शिक्षा के मुकाबले कहीं ज़्यादा खुलेपन पर आधारित थी।

? **विवेक वेलांकी:** मगर उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर तक भी, उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले के संघर्ष मौजूद थे जो समाज में ज़्यादा व्यापक पहुँच के लिए संघर्ष कर रहे थे।

अमन मदान: हाँ, यह सही बात है।

? **विवेक वेलांकी:** मेरिट बहुत पुराना विचार नहीं है। इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि धरातल पर स्वीकार्यता के लिहाज़ से इस अवधारणा का इतिहास 100 साल से ज़्यादा पुराना नहीं है।

अमन मदान: मैं अक्सर सोचता हूँ कि इस अवधारणा के इतिहास को कोई तारीख दी जा सकती है या इसका कोई काल निर्धारण किया जा सकता है या नहीं। फिर भी, यह एक ऐसा विचार है जो क्रमिक ढंग से बढ़ता रहा है। अतीत में, अन्य कई मौकों पर भी हमें इसके अंश दिखाई देते हैं, मगर आम तौर पर यह स्थिति खास समुदायों तक ही सीमित रहती थी। उदाहरण के लिए, जाटों में यह फैसला व्यक्ति की खासियतों, उसके परिवार और उसकी क्षमताओं पर निर्भर करता था कि समुदाय का नेता कौन होगा। मगर एक व्यापक सामाजिक सिद्धान्त के तौर पर यह अवधारणा धीरे-धीरे विकसित होती रही है।

? **विवेक वेलांकी:** मेरिटोक्रेसी इस धारणा पर आधारित है कि समाज में अवसरों की समानता होगी और ये अवसर जन्म पर आधारित नहीं होंगे। समाजशास्त्रियों ने इस धारणा का काफी आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। बहुत सारे अध्ययनों में इस बात पर गौर किया गया है कि मेरिट को किस तरह वैधता दी जाती है और यह क्या भूमिका निभाती है। क्या आप ऐसे अध्ययनों के बारे में हमें कुछ बताएँगे जो इस विचार का विश्लेषण करते हैं?

अमन मदान: समाज में अलग-अलग भूमिकाओं में लोगों के खपने की सम्भावनाओं के बारे में एक खुला रवैया अपनाने के फायदों से कोई इनकार नहीं कर सकता। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के पक्ष में भी एक तर्क यही है कि इससे पूरे समाज को लाभ होता है; यह थोड़े-से लोगों की प्रतिभा के स्थान पर कहीं ज़्यादा लोगों को प्रतिभा-सम्पन्न बना देती है। इसके फलस्वरूप, हम ऊपरी स्तरों पर कुछ खास समूहों के लोगों की हिमायत करने की बजाय किसी भी समूह के लोगों की ऊपरी पदों पर आने की सम्भावना के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाने लगते हैं। लिहाज़ा, जो समाज थोड़ा-सा भी परतबद्ध है, उसे भूमिकाओं के आवंटन व निर्धारण की प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ता है और भूमिकाओं के आवंटन की इन्हीं प्रक्रियाओं को हम आम तौर पर मेरिट कहते हैं। यहाँ बड़ा सवाल यह है : क्या भूमिकाओं को बाँटने की ये प्रक्रियाएँ वाकई निष्पक्ष और तटस्थ हैं? क्या वे सही हैं? लगभग हर समाज में मेरिट का आंशिक बोध ज़रूर होता है। मगर क्या वह मेरिट का सही आशय होता है?

एक छोटा-सा उदाहरण लीजिए : हो सकता है कि हम ऐसे समाज में रहते

हों जहाँ मध्यम और ऊपरी जनसंख्या के बीच भारी सामाजिक असमानता हो, या सबसे निचले और सबसे ऊपरी तबकों के बीच भारी असमानता हो। ऐसे में कोई भी व्यक्ति जो शिखर पर पहुँचना चाहता है, उसे बहुत कठिन परिश्रम करना होगा, बेहद 'प्रतिस्पर्धी' रवैया अपनाना होगा। या यूँ कहिए कि उस व्यक्ति को यह सुनिश्चित करना होगा कि वह औरों से बहुत ज़्यादा बेहतर हो, दूसरों को अपने पास न पहुँचने दे या सामूहिक रूप से काम न करे या दूसरों के साथ साझेदारी में काम न करे ताकि औरों से अपना व्यक्तिगत फर्क और श्रेष्ठता बनाए रखने में कामयाब हो सके। इसका एक मतलब यह भी है कि ऐसे समाज में शिखर तक पहुँचने के लिए लोगों को ज़्यादा शोषणपरक और वर्चस्वशाली रवैया अपनाना होगा।

यह मेरिट का एक बोध है। मगर यह मेरिट का एकमात्र बोध नहीं है। मेरिट का वास्तविक अर्थ इस पर निर्भर करता है कि हम किस तरह का समाज बनाना चाहते हैं। हो सकता है कि हम ऐसा समाज रचना चाहते हों जो

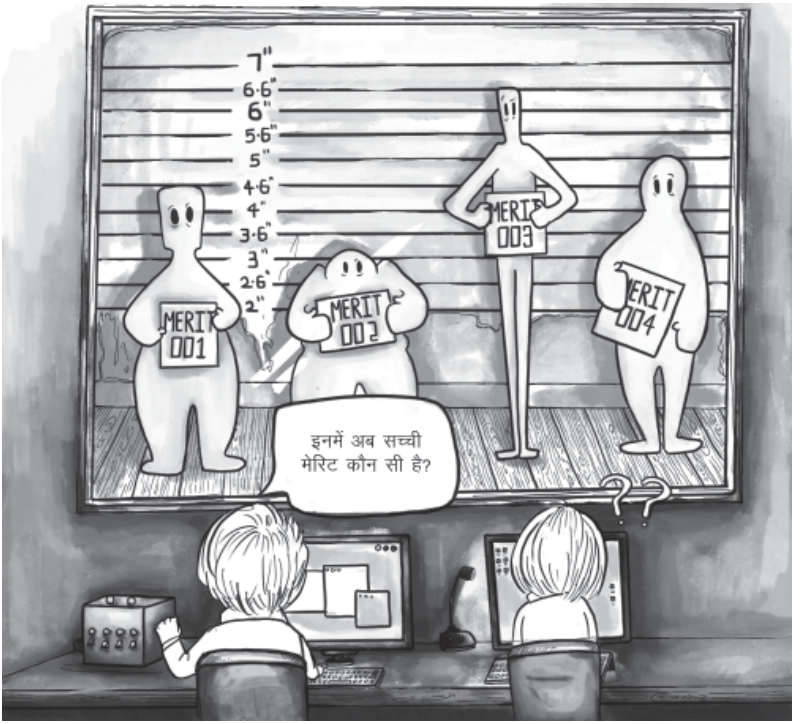

इस बात पर विश्वास न रखता हो कि समाज के केवल एक प्रतिशत लोग ही शिखर तक पहुँच सकें, बल्कि जो समाज में सम्पत्ति व प्रतिष्ठा के ज़्यादा निष्पक्ष और व्यापक वितरण का हिमायती हो। इस तरह के समाज में मेरिट का क्या मतलब होगा, यह पहले वाले समाज में मेरिट के प्रचलित अर्थ से बहुत भिन्न होगा। कुछ लोग कहेंगे कि मेरे समाज में मेरिट का जो भी मतलब हो, उसका मैं बचाव करूँगा। मिसाल के तौर पर, मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी स्कूल-व्यवस्था में मुझसे यह समझने की अपेक्षा नहीं की जाती कि मैं क्या पढ़ रहा हूँ बल्कि मुझे सब चीज़ों को रट लेने की और इम्तहान की अपेक्षा की जाती है, और यही मेरी मेरिट का सबूत है। दूसरे लोग इसे खारिज कर देंगे और कहेंगे : भला इसमें मेरिट वाली क्या बात है? हम चाहे जिस किस्म के भी लोग तैयार कर रहे हों, वह हमारी परीक्षा व्यवस्था ही तय करती है कि कौन-सा व्यक्ति मेरिट-सम्पन्न है और कौन-सा नहीं है। ज़्यादा मेरिट-सम्पन्न व्यक्ति वह भी हो सकता है जो कहे कि "मैं चीज़ों को रटूँगा नहीं बल्कि मैं उनको समझने की कोशिश करूँगा।" इस प्रकार, हर समाज के पास मेरिट का एक खास अर्थ होता है मगर फिलहाल हमें एक कदम पीछे हटकर एक नैतिक सवाल उठाना होगा – हम किस तरह की मेरिट का समर्थन करना चाहते हैं?

बहुत सारे लोग हैं जो आम तौर पर किसी भी तरह की मेरिट को सही ठहराने लगते हैं। साथ ही, ऐसे भी लोग हैं जो किसी खास तरह की मेरिट के ही समर्थक हैं और अन्य प्रकार की मेरिट के आलोचक हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि मैं ऐसी स्कूली संस्कृति के विरुद्ध हूँ जो कहती है कि प्रतिस्पर्धा में सफल होना और शिखर पर पहुँचना ही सब कुछ है। दूसरी तरफ कोई व्यक्ति यह भी कह सकता है कि मेरे लिए वही स्कूली संस्कृति ज़्यादा अच्छी होती है जहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति होना ज़्यादा महत्वपूर्ण है, मगर श्रेष्ठता का अर्थ यह हो कि हम अच्छे मनुष्य बनें, ऐसे व्यक्ति बनें जो दूसरों की फिक्र करते हों, जो दूसरों के साथ काम करते हों और सामूहिक श्रेष्ठता में विश्वास रखते हों। ये दो अवधारणाएँ बिलकुल अलग-अलग संस्कृतियों और बहुत अलग किस्म के समाजों को जन्म देंगी। हम किस तरह की मेरिट को बढ़ावा देना चाहते हैं, यह चुनने में यही समस्या सामने आती है कि हम किस तरह की संस्कृति और समाज चाहते हैं।

? **विवेक वेलांकी:** मेरिट को उसकी पेचीदगी में देखने की यह समझ समाजशास्त्रीय अध्ययनों से पैदा हुई है। क्या ऐसे समाजशास्त्रीय अध्ययन भी हुए हैं जो इन भेदों और पेचीदगियों को भारतीय सन्दर्भ में देखते हों?

अमन मदान: इन चीज़ों के बारे में आपको कई भारतीय समाज वैज्ञानिक

बात करते हुए दिखाई देंगे। उदाहरण के लिए, तत्काल मुझे पद्मा वेलासकर का काम याद आ रहा है। उन्होंने एक बहुत बढ़िया पर्चा लिखा है जो इस बात को सामने लाता है कि किस तरह परम्परागत स्कूल लगभग मनमाने ढंग से चलते हैं। उनकी रूपरेखा ही लगभग ऐसी है कि वे मध्यवर्गीय और उच्चजातीय बच्चों की जीवन शैली को केन्द्र में रखकर चलाए जा रहे हैं। पद्मा वेलासकर का यही कहना है। उनके मुताबिक, यह मनमानी संरचना हमारी सामाजिक सत्ता की अभिव्यक्ति है, यह ग्रामीण पृष्ठभूमि और अन्य जातियों के बच्चों के लिए उस व्यवस्था में खपना बहुत मुश्किल बना देती है क्योंकि उसमें इसे ही स्कूल चलाने का सबसे अच्छा तरीका मान लिया गया है। ऐसे बच्चों को जल्दी ही पता चल जाता है कि येनकेन प्रकारेण उन्हें हाशिये पर छोड़ दिया जाएगा। इसलिए नहीं कि यह एक बेहतर व्यवस्था है बल्कि इसलिए क्योंकि यह कुछ खास समूहों की सुविधा को ध्यान में रखकर ही बनाई गई है।

अविजीत पाठक का काम भी महत्वपूर्ण है। वे इस पर सवाल उठाते हैं कि हम अपनी शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए एक उपभोक्तावादी जीवन की आकांक्षाओं को ही प्रेरक वस्तु के रूप में पेश क्यों करते हैं। वे सवाल उठाते

हैं : क्या हम अपने युवाओं को सचमुच इसी तरह का जीवन जीते हए देखना चाहते हैं? क्या हम वयस्कों से ठीक इसी तरह की ज़िन्दगी की उम्मीद रखते हैं? यदि नहीं तो फिर हम अपने लोगों से किस प्रकार की शैक्षिक श्रेष्ठता की उम्मीद रखते हैं? यहाँ वे उपभोक्तावाद के स्वरूप को तथा उसके अन्य सम्भावित स्रोतों को चर्चा में ले आते हैं जिनसे भारतीय परिचित हैं। इस प्रकार, आप देख सकते हैं कि हमारे यहाँ भी कई भारतीय चिन्तक और विद्वान हैं जिन्होंने इस सवाल पर बहुत गम्भीरता से काम किया है। उन्होंने ये सवाल उठाने की कोशिश की है कि (क) एक खास तरह की सत्ता व्यवस्था को वैधता देने के लिए हमारे समाज में एक अवधारणा के तौर पर मेरिट का इस्तेमाल किस तरह किया गया है? तथा (ख) अगर ऐसा नहीं है तो मेरिट के बारे में सोचने के अन्य रचनात्मक तरीके क्या हो सकते हैं?

? **विवेक वेलांकी:** जब हम मेरिट और आरक्षण की बात करते हैं तो सबसे ज़्यादा एक ऐसी प्रतिस्पर्धी दौड़ का रूपक दिया जाता है जिसमें सभी एक लकीर से शुरू करते हैं। मगर आप जो कह रहे हैं, उससे ऐसा लगता है कि मेरिट और उसकी पेचीदगियों के बारे में बात करने के लिए यह रूपक ठीक नहीं है। अपने लेख में आपने लिखा है कि 'मेरा अपना आकलन यह है कि लगभग 80 प्रतिशत युवाओं को कक्षा 12 के बाद प्रतिस्पर्धी परिक्षाओं में बैठने का अवसर तक नहीं दिया जाता है' (मदान 2007, पृष्ठ 3046)। यानी आप यह कह रहे हैं कि यह दावा ही गलत है कि यह मुकाबला सबके लिए एक-जैसा है। क्या आप मेरी व्याख्या से सहमत हैं?

अमन मदान: बिलकुल सही कहा आपने। बल्कि मैं इस आँकड़े को थोड़ा बदलकर और ज़्यादा कठोर तर्क देना चाहता हूँ। उस वक्त मेरा अन्दाज़ा 20 प्रतिशत था। अभी मैं 2009-2010 के एनएसएस डेटा का अध्ययन कर रहा हूँ। इसके आधार पर मैं देख रहा हूँ कि किसी भी तरह की उच्च शिक्षा या किसी तरह का डिप्लोमा कोर्स करने वाले, यानी स्कूल के बाद कोई भी पढ़ाई करने वाले लोगों की संख्या 2009-2010 में 9 प्रतिशत से भी कम थी। मैं 17-24 आयुवर्ग की बात कर रहा हूँ। यह 20 प्रतिशत जीईआर (ग्रॉस एनरोलमेंट रेशो) नहीं है जिसकी भारत सरकार बात कर रही है। वह आँकड़ा सारे आयु वर्गों के लिए है। तो, इस विश्लेषण से मुझे जो समझ में आ रहा है, वह यह है कि हमारे यहाँ 10 प्रतिशत से भी कम लोग इस स्थिति में हैं कि वे किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा तक पहुँच पाएँ, यानी स्कूल के बाद भी किसी तरह की पढ़ाई जारी रख पाएँ। याद रखें, ऐसा नहीं है कि बाकी 90 प्रतिशत लोगों के पास उच्च शिक्षा में जाने की बजाय

ज़्यादा बेहतर विकल्प उपलब्ध हैं। असल में, उनकी यह अनुपस्थिति गहरी हताशा से पैदा होती है। यही बात पूरी स्थिति को निर्धारित कर रही है। यानी 90 प्रतिशत से ज़्यादा भारतीयों के लिए चीज़ें इससे तय नहीं होतीं कि वे किन चीज़ों की चाहत रखते हैं बल्कि इस बात से तय होती है कि वे क्या नहीं कर सकते।

प्रसंगवश, उच्च शिक्षा में जा पाने वाले 10 प्रतिशत से भी कम लोग हैं, और उन लोगों में से भी ज़्यादातर बहुत निम्न-स्तरीय उच्च शिक्षा तक ही पहुँच पाते हैं। यानी असल में हम मध्यवर्गीय नौकरियों में जाने वाले तबके के एक बहुत ही छोटे हिस्से के बारे में बात कर रहे हैं। मध्यमवर्ग कितना बड़ा है, यह एक अलग कहानी है। जो लोग मध्यमवर्ग का हिस्सा नहीं हैं, वे उससे बाहर इसलिए नहीं हैं क्योंकि उनके पास मेरिट का अभाव है, बल्कि वे हमारी सामाजिक संरचना के कारण उस वर्ग से बाहर हैं। यह सामाजिक संरचना उन्हें मेरिट अर्जित करने से रोक देती है, चाहे मेरिट की प्रचलित धारणा कुछ भी क्यों न हो। इस छोटे-से तबके में भी यह दौड़ बराबरी की और निष्पक्ष नहीं है। यह एक ऐसी दौड़ है जिसमें कुछ लोगों के पाँव बाँध दिए गए हैं, कुछ लोगों को पैरों का इस्तेमाल करने से रोक दिया गया है और फिर उनको चीख-चीखकर कहा जा रहा है : "दौड़ो, तुम सब तेज़ी-से दौड़ो!" और फिर इसे 'निष्पक्ष दौड़' का नाम दे दिया जाता है। अगर आप वाकई निष्पक्ष दौड़ चाहते हैं तो सबसे पहले हरेक को अच्छी और बराबर तालीम दीजिए। तब हम कहेंगे : "हाँ, अब ठीक है, अब यह दौड़ बराबरी की हुई।"

? **विवेक वेलांकी:** यानी पलड़ा पहले ही प्रभुत्वशाली समूहों के पक्ष में झुका हुआ है। अपने इसी विचार को विस्तार देते हुए आप लिखते हैं कि 'मेरिट पर सवाल उठाने का मतलब है, व्यक्तिवाद पर सवाल उठाना, रोज़गार बाज़ार के न्याय पर शंका व्यक्त करना और उपभोक्तावाद की वैधता को चोट पहुँचाना' (मदान 2007, पृष्ठ 3049)। मेरिट को इन सारी वृहत्तर सामाजिक प्रक्रियाओं से जोड़कर देखना बहुत ही पेचीदा सुझाव लगता है।

अमन मदान: इसमें कोई दिक्कत नहीं है कि ये तमाम नौजवान मेरिट की बात कर रहे हैं। वे ज़िन्दगी में जो कुछ पाना चाहते हैं, उसके लिए वैधता के साधन के तौर पर इसका सहारा ले रहे हैं। लिहाज़ा, जो भी व्यक्ति व्हाइट कॉलर नौकरियों में जाता है, खास तौर से इसलिए क्योंकि हमारे देश में इतनी भारी असमानता मौजूद है, उसे ऊपरी श्रेणी की व्हाइट कॉलर नौकरियों में ही वे चीज़ें मिल पाएँगी जो कुछ लोगों के लिए इस सारी मेहनत के बिना भी उपलब्ध हैं। मसलन, इलाज की सुविधा पाना, ऐसी

स्थिति में न फँसना जहाँ बीमार पड़ना परिवार को तबाह कर देने का सबब बन सकता हो।

ज़्यादातर लोगों के लिए व्हाइट कॉलर नौकरी बहुत मायने रखती है। और इसके साथ बहुत सारी अन्य सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी अस्तित्व में आ जाती हैं जो इस व्यवस्था को स्वीकार्यता प्रदान करती हैं और उसी पैकेज का हिस्सा होती हैं। यह सिर्फ एक आर्थिक नफे-नुकसान की बात नहीं है; यह एक सामाजिक लाभ है और एक खास तरह की जीवनशैली को चाहने के बोध का लाभ है। मेरिट को इन सारी चीज़ों की वैधता के साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। लिहाज़ा, आप नौजवानों को यह सवाल पूछते पाते हैं कि अगर कोई चीज़ नैतिक धरातल पर इतनी सन्देहास्पद है तो उसके लिए वे इतनी मेहनत क्यों कर रहे हैं। इसके जवाब में आम तौर पर जो उत्तर मिलता है, मिसाल के तौर पर, वह वही है जो आमतौर पर मैं सिविल सर्विसेज़ की तैयारी में जुटे नौजवानों से अक्सर सुनता हूँ – यह देश की सेवा का मसला नहीं है बल्कि लाल बत्ती वाली सफेद एम्बैसडर कार पाने का मसला ज़्यादा है।

यह एक प्रतीकात्मक बात है। यह ताकत और ओहदे का प्रतीक है। या फिर आप लोगों को तीस हज़ार वाला मोबाइल फोन खरीदने के लिए जुटा दिखाई देंगे। इसके साथ भी कई तरह के अर्थ जुड़े हुए हैं। यानी लोग सिर्फ पैसे की कामना नहीं रखते, लोग एक आला जीवन शैली चाहते हैं। जैसा कि पिछले दिनों शिक्षा से जुड़े मेरे दो साथियों ने कहा था – स्कूल, शिक्षा और मेरिट ऐसी चीज़ें नहीं हैं जो केवल अपने बूते पर कोई अर्थ रखती हों। ये एक ज़्यादा वृहत्तर समाज का हिस्सा हैं जिसमें वर्ग और संस्कृति गहरे तौर पर आपस में गुँथे हुए हैं। और ये उन तर्कों को जायज़ ठहराने का तरीका बन जाते हैं जो लोग पेश कर रहे हैं।

? **विवेक वेलांकी:** आप काफी समय से समाजशास्त्र पढ़ा रहे हैं। आपने एक आईआईटी में भी पढ़ाया है जो कि कई मायनों में मेरिट की हिमायत का गढ़ रहा है। अब आप अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहे हैं। मेरिट के बारे में पुनर्विचार के लिए आप क्या तरीके सुझाना चाहेंगे? अपने लेख (मदान, 2007) में आपने कहा है कि मेरिट पर पुनर्विचार करने के लिए हमें अध्यापक के बारे में और कक्षा के भीतर उसके व्यवहार और स्थिति के बारे में भी सोचना होगा। यह कैसे सम्भव है?

अमन मदान: बहुत सारी चीज़ें हैं जिन पर हमें पुनर्विचार करना चाहिए। आइए, मैं आपको एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। मान लीजिए कि मैं

सामन्तवादी विश्व दृष्टिकोण के साथ और जातिगत पूर्वाग्रहों के आधार पर चलता हूँ। मैं मानता हूँ कि केवल ऐसे लोगों के पास ही मेरिट होती है। अब देखिए कि इसे विचारों की एक संरचना में और इस बात में तब्दील किया जा रहा है कि समाज को कैसे देखा जाना चाहिए, चीज़ें कैसे की जानी चाहिए। जब हम इस विचार संरचना को अपनी कक्षा में लेकर पहुँचते हैं तो एक ऐसी स्थिति पैदा होती है जहाँ अध्यापक केवल उनकी तरफ मुखातिब होता है जिनको वह होशियार बच्चे मानता है। यानी वह करीब 10 या 15 प्रतिशत बच्चों से बात कर रहा/रही होती है। उसके लिए बाकी बच्चे 'अन्य' हो जाते हैं – भले ही अन्यता का स्तर अलग-अलग हो। अध्यापक जो मेहनत करता है, वह उन्हीं चन्द बच्चों को ध्यान में रखकर करता है। आप चाहें तो इस तस्वीर को पलटकर भी देख सकते हैं। आप मेरिट की उस परिभाषा के आधार पर सोचना छोड़ भी सकते हैं जो बुनियादी तौर पर बेहद गैर-बराबरी भरे समाज की स्वीकार्यता पर आधारित है, जो एक जातिग्रस्त समाज या सोच पर आधारित है, जो इस मान्यता पर आधारित है कि विभिन्न समाजों में केवल कुछ लोगों के पास ही मेरिट होती है। ऐसे में, वैकल्पिक पोज़िशन यह हो सकती है – आप नहीं जानते

कि लोग कैसे आगे बढ़ेंगे, आपको नहीं मालूम कि उनमें किस तरह की क्षमताओं के फूल खिलेंगे। ऐसे में आप सबके साथ एक तरह से प्रयास करते हैं और नाना प्रकार से उन्हें प्रोत्साहन देते हैं क्योंकि आपको मालूम नहीं है कि कौन किस दिशा में और किस तरह बढ़ेगा, आपको मालूम नहीं है कि क्षमताओं का अन्तिम वितरण क्या होगा – क्या यह अभी 10 प्रतिशत ही रह जाएगा या इसकी तस्वीर बहुत भिन्न होगी। लिहाज़ा, शिक्षक प्रशिक्षण का एक हिस्सा वह है जिसमें अध्यापक को सिर्फ 10 प्रतिशत को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि कक्षा के सबसे कमज़ोर विद्यार्थियों पर भी समान रूप से ध्यान देने के लिए प्रेरित और प्रशिक्षित किया जा रहा हो। मेरी निगाह में ऐसे बहुत सारे समूह हैं जो पहले ही इस दिशा में काम कर रहे हैं। बहुत सारे देशों में भी इस पर बहुत ज़ोर दिया जाता है। अगर किसी को अध्यापक के अधिकतम प्रयास की आवश्यकता है तो सबसे पहले वह दावा सबसे कमज़ोर विद्यार्थियों का ही होना चाहिए।

कुछ समय पहले मैं तमिलनाडु में एक आदिवासी संगठन द्वारा चलाए जा रहे स्कूल के अध्यापकों से बात कर रहा था। मैंने उनसे पूछा : "आपके स्कूल और अन्य स्कूलों में क्या फर्क है?" उनका जवाब बहुत ही कमाल का था। एक के बाद एक सारे अध्यापकों ने मुझे एक ही बात बताई और यही बात फिर मुझे विद्यार्थियों से भी सुनने को मिली। उन्होंने कहा कि "हमारे स्कूल और दूसरे स्कूलों के बीच फर्क यह है कि यहाँ अगर किसी को कोई बात समझ में नहीं आती है तो अध्यापक फिर से उसे समझाते हैं; वे उन पर सबसे ज़्यादा और सबसे पहले ध्यान देते हैं जो कोई चीज़ नहीं समझ पा रहे हैं।" फिर मैंने एक लड़की से बात की जो उस स्कूल से पढ़कर निकली थी। उसके बाद वह कहीं और पढ़ने गई और फिर लौटकर दोबारा संगठन से जुड़ गई। उसने मुझे बताया, "जब मैं दूसरे स्कूलों में पढ़ी तो लोगों का बर्ताव मेरे साथ अच्छा था। किसी ने मेरे साथ कोई भेदभाव नहीं किया और कइयों से मेरी दोस्ती भी हुई, मगर वहाँ एक बड़ा फर्क यह था कि अध्यापक यह सुनिश्चित करने की कोशिश ही नहीं करते थे कि सभी को सारी बातें समझ में आएँ। अध्यापक कुछ पढ़ाते थे और आगे बढ़ जाते थे।" यह जो फर्क है, इसके लिए हमें कई पहलुओं को अच्छी तरह समझना पड़ेगा। और मेरे ख्याल में यह मेरिट की अवधारणा का निषेध नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मेरिट महत्वपूर्ण नहीं है। मेरिट बहुत महत्वपूर्ण है। एक ऐसा समाज जिसमें भूमिकाओं का बँटवारा जन्म की बजाय क्षमताओं के आधार पर हो, उसको साकार करना बहुत ही महत्वपूर्ण है, मगर हमें यह भी समझना होगा कि मैं इस मान्यता के आधार पर प्रस्थान

नहीं कर सकता कि सारी क्षमता सिर्फ 5 प्रतिशत लोगों के पास है। मुझे हर व्यक्ति पर ध्यान देना होगा और फिर यह देखना चाहिए कि किसके पास क्या क्षमता है। मुझे इस विश्वास से बाहर निकलना होगा कि आखिरकार सिर्फ 10 प्रतिशत लोग ही शिखर तक पहुँचेंगे। इसकी बजाय मुझे एक ऐसी संरचना पर ध्यान देना होगा जिसमें भूमिकाओं के वितरण की एक अलग व्यवस्था हो। यह एक अलग तरह का सवाल है। इसका मतलब यह है कि मैं किस तरह की अर्थव्यवस्था चाहता हूँ।

अमन मदान: अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। उनके शोध विषय सामाजिक परतीकरण, शिक्षा एवं संगठन समाजशास्त्र तक विभिन्न प्रकार के विषयों तक फैले रहे हैं। वे *कंटेम्परेरी एजुकेशन डायलॉग* के सम्पादक मण्डल के सदस्य भी हैं।
सम्पर्क: amman.madan@apu.edu.in

विवेक वेलांकी: फिलहाल, मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी स्थित कॉलेज ऑफ एजुकेशन के करिक्युलम, इंस्ट्रक्शन एण्ड टीचर एजुकेशन विभाग से पीएच.डी. कर रहे हैं। जिस समय यह साक्षात्कार रिकॉर्ड किया गया था, उस समय वे रीजनल रिसोर्स सेंटर फॉर एलिमेंटरी एजुकेशन (आरआरसीईई), दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोजेक्ट ऑफिसर के पद पर काम कर रहे थे। अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक सुधार, आलोचनात्मक सिद्धान्त, जाति, नस्ल और जेंडर आदि सवाल उनके शोध का मुख्य विषय रहे हैं।
सम्पर्क: vivek.vellanki@gmail.com

अँग्रेज़ी से अनुवाद: योगेंद्र दत्त।

सभी चित्र: पूजा के. मैनन: *एकलव्य,* भोपाल में बतौर जूनियर ग्राफिक डिज़ाइनर काम कर रही हैं। जन्म पलक्कड़, केरल में हुआ लेकिन एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करने के कारण बहुत-से नए लोगों से मिलना हुआ। चूँकि वे अन्यथा बातचीत करने में झिझकती थीं, स्केचिंग ने उनके विचारों को सम्प्रेषित करने और टिप्पणियों का दस्तावेज़ीकरण करने में एक माध्यम का काम किया। धीरे-धीरे रेखाचित्र कहानियों में बदल गए जिन्होंने उन्हें जीवन और लोगों को समझने और खुद को व्यक्त करने में मदद की।

यह साक्षात्कार *शिक्षा संवाद* संकलन से साभार। यह साक्षात्कार क्षेत्रीय प्रारम्भिक शिक्षा संसाधन केन्द्र (आरआरसीईई), दिल्ली यूनिवर्सिटी द्वारा डायलॉगिंग एजुकेशन शृंखला के तहत रिकॉर्ड किए गए साक्षात्कार का सम्पादित संस्करण है। इस संकलन के साक्षात्कारों को लिखित और ऑडियो माध्यमों में www.rrcee.net पर भी देखा जा सकता है। सम्पादक - विवेक वेलांकी व पूनम बत्रा।

सन्दर्भ: Madan, A. (2007). Sociologising merit. Economic and Political Weekly, 42(29), 3044-3050.

अभियान : टाइटन

सतीश बलराम अग्निहोत्री

"प्रोफेसर अभियान, तुमने भी मुझ पर आक्रमण करने की मूर्खता की है।" जीव का स्वर सपाट था। "पता नहीं, तुम लोगों को विद्युत और चुम्बकीय क्षेत्रों पर इतना भरोसा क्यों है! मेरा सारा बदन इनके विरुद्ध सुरक्षित है। तुम्हें अगर देखना ही है तो मैं एक और तरंग का कमाल दिखाता हूँ – वह है ध्वनि-तरंगों का कमाल! उसके बाद शायद तुम लोग मुझे फिर परेशान करने की कोशिश नहीं करोगे। और तुम, प्रोफेसर अभियान, मेरे साथ चलकर मुझे संकेत-उपकरण तैयार करने की सारी विधि विस्तार से बताओगे। चलो।"

कोई चारा नहीं था। जीव सबको मौसममापी टॉवर के पास ले गया। इस टॉवर पर टाइटन का अन्तरिक्ष रडार भी रखा रहता था। "अब मैं तुम लोगों को दिखाता हूँ, किस तरह ध्वनि-तरंगें एक इमारत को तहस-नहस कर सकती हैं। मैं अब ध्वनि-तरंगें पैदा करूँगा जिनकी लम्बाई क्रमश: छोटी होती जाएगी और लय बढ़ती जाएगी। एक स्थिति ऐसी आएगी जब पूरी इमारत उसी लय के साथ काँपने लगेगी और फिर धराशायी हो जाएगी।"

इस प्रभाव से सभी वाकिफ थे। यही कारण था कि दशकों पहले पृथ्वी पर सेनाओं को पुलों पर मार्च करना मना था। उनके मार्च करने की लय से पुल भी उसी लय से काँपकर टूट सकता था। लेकिन अस्त्र के रूप में इस प्रभाव का उपयोग किसी ने नहीं सोचा था।

विस्फारित आँखों से सब देख रहे थे। टॉवर का निचला भाग वाकई भरभराने लगा था। जीव ने लहरों की तीव्रता बढ़ाई, टॉवर का ऊपरी हिस्सा अब एक ओर झुकने लगा। देखते-देखते वह चरमरा कर गिर पड़ा।

जीव ने अपने दर्शकों की ओर सन्तोष से देखा और फिर सपाट आवाज़ में बोला, "अब, प्रोफेसर अभियान, तुम मेरा काम दो घण्टों के भीतर करोगे, वरना मैं ध्वनि लहरों का उपयोग तुम पर करूँगा।"

सबके चेहरे गम्भीर हो गए। पासा उलटा पड़ा था। लेकिन अभियान ने धीरज नहीं खोया, उनका दिमाग तेज़ी-से काम कर रहा था। कुछ भी करके संकेत-उपकरण के निर्माण को यथासम्भव आगे टालना होगा। वे जीव के साथ यान की ओर चल पड़े।

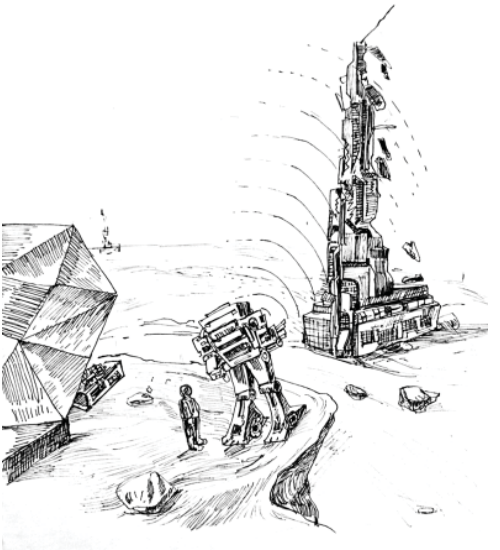

दरअसल, उनके दिमाग में एक तरकीब आ चुकी थी।

"तुम्हारे उपकरण के लिए सिलिकॉन क्रिस्टल की आवश्यकता है। लेकिन जितना शक्तिशाली संकेत तुम भेजना चाहते हो, उसके लिए काफी बड़े रवे की – 5 सेमी x 5 सेमी x 5 सेमी के आकार की आवश्यकता पड़ेगी।" उन्हें पता था कि इस आकार का रवा बनाना मामूली काम नहीं है। दस-पन्द्रह दिन उसमें लग जाएँगे, तब तक कुछ और उपाय सोचा जा सकता है।

जीव का सन्देह कायम था। उसने अभियान से उपकरण के सर्किट के बारे में विस्तार से जानकारी लेकर खुद को आश्वस्त किया। अभियान उसे प्रयोगशाला में ले गए और उसके सामने रवा बनाने की पूरी तैयारियाँ कीं और प्रक्रिया चालू की। यह अलग बात थी कि उन्होंने जान-बूझकर एक पुरानी और धीमी प्रक्रिया चुनी थी।

***

आज की घटना की खबर सारी कॉलोनी में फैल चुकी थी। अभियान के वापस आने पर चिन्तित वैज्ञानिकों ने उनसे सारा विवरण पूछा और अभियान ने उन्हें विस्तृत जानकारी दी।

रात को अभियान अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे कि सन्दीप आया। उसकी आँखें उत्सुकता से चमक रही थीं।

"अंकल-अंकल, मुझे एक बात पूछनी थी।"

"कौन-सी? वह सैटेलाइट वाली?"

"नहीं-नहीं अंकल, लेकिन वैसी ही।"

"पूछो।" अभियान ने कहा।

"अंकल, आज हमारी टीचिंग मशीन हमें सैटेलाइट के बारे में बता रही थी। उसने बताया कि सैटेलाइट को टाइटन के चारों ओर चक्कर लगाने के लिए एक कक्षा में छोड़ा जाता है, लेकिन उसके लिए यह ज़रूरी है कि उसे टाइटन की सतह से कम-से-कम एक खास वेग से छोड़ा जाए, है न?"

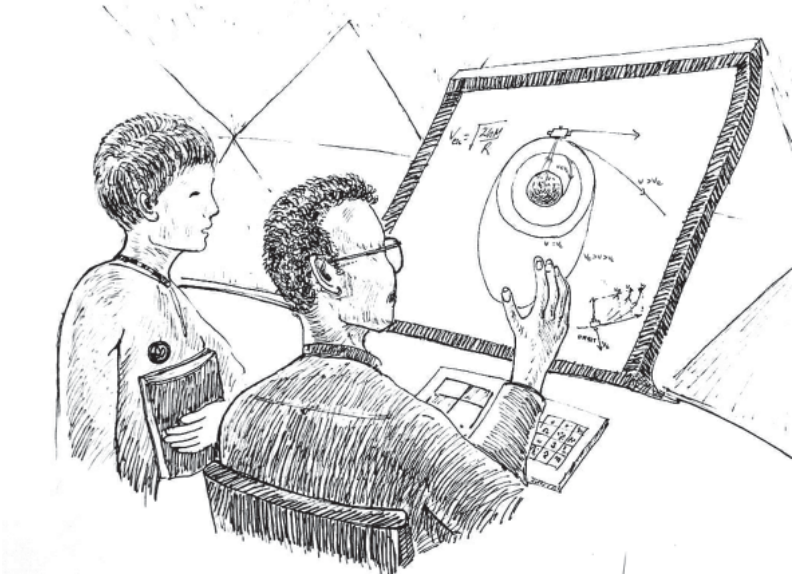

"हाँ बेटे, यह वेग, मुक्ति-वेग यानी एस्केप वेलोसिटी कहलाता है। तुम्हें मालूम है कि ग्रह के गुरुत्वाकर्षण के कारण जब तुम किसी वस्तु को ऊपर फेंकते हो, वह नीचे की ओर गिर पड़ती है। तुम उसे जितने वेग से फेंकोगे, वह उतनी ऊपर जाएगी। एक स्थिति ऐसी आएगी जब वह वस्तु टाइटन के गुरुत्वाकर्षण के चंगुल से मुक्ति पा जाएगी और ऊँचाई पर एक कक्षा-विशेष में टाइटन का चक्कर लगाती रहेगी। उसे ही उपग्रह कहते हैं।" अभियान के अन्दर का शिक्षक जाग पड़ा था। "तुम्हारा टाइटन खुद शनि का उपग्रह है। हमारा चाँद भी पृथ्वी का उपग्रह ही समझो।"

"यानी अंकल, एक बार अगर कोई वस्तु उस कक्षा में पहुँच जाए तो वह वहीं रह जाएगी?"

"हाँ, आम तौर पर।"

"वापस नहीं आएगी?"

"ना, ना बेटे, वापस नहीं आएगी। वापस कैसे आएगी?"

"अगर वह चाहे भी तो?"

"आँय, चाहे का सवाल ही कहाँ उठता है? बेजान वस्तु..."

"बेजान नहीं अंकल, वह जीव..."

"वह जीव? लेकिन वह वहाँ क्या करेगा?"

"ओफ्फो अंकल, अगर हम उसे मुक्ति-वेग से भी अधिक वेग से फेंक दें तो वह हमेशा के लिए वहाँ चक्कर लगाता रहेगा, पर कुछ कर नहीं पाएगा।"

"ओह!" अब अभियान के दिमाग में प्रकाश कौन्धा और वे हँसने लगे। हँसते-हँसते उनकी आँखों में पानी आ गया। "पर दीपू बेटे, बिल्ली के गले में घण्टी बाँधोगे कैसे? जब तक हम उसे पकड़ेंगे और फेंकेंगे, वह हमारी चटनी बना चुका होगा।"

दीपू के मुरझाए हुए चेहरे को देखकर उन्हें बुरा लगा। उन्हें इस तरह हँसना नहीं चाहिए था। अपनी समझ के मुताबिक ही सही, पर उसने एक सुझाव तो दिया था। सच पूछा जाए तो सुझाव इतना बेतुका भी नहीं था। सिर्फ इस जीव को पकड़ पाना...

***

दीपू के जाने के बाद काफी देर तक अभियान बिस्तर पर बैठे रहे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। दीपू का सुझाव उनके मन में कहीं घर कर गया था। अगर किसी तरह जीव को फेंका जा सके... वे सोचने लगे। कई हास्यास्पद विचार उनके मन में आए, जिनमें अन्तिम था, 'क्या ही अच्छा हो, वह कमबख्त खुद ही कक्षा में जाने को तैयार हो जाए।' उन्हें अपने बचपने पर हँसी आ गई। "खुद मान जाए!" लेकिन अचानक उनकी हँसी को ब्रेक लगे – "क्यों नहीं?"

फिर तो विचारों का सिलसिला जिस रफ्तार से उनके दिमाग में चला, उसी रफ्तार से वे अपने स्लीपिंग सूट में ही उठकर डॉ. राव के कमरे की ओर बाकायदा आर्किमिडीज़ की परम्परा में 'यूरेका-यूरेका' कहते हुए दौड़ लिए।

जीव से बातों के दौरान अभियान को पता चला था कि उसके ग्रह पर गुरुत्वाकर्षण का बल टाइटन के मुकाबले कोई 500 गुना अधिक था। अत: वहाँ रॉकेटों को जिस मुक्ति-वेग से छोड़ा जाता था, वह टाइटन ग्रह से छोड़े गए रॉकेटों के मुक्ति-वेग से बहुत ही ज़्यादा था। अगर वे उस जीव से ऐसे वेग से छलाँग लगवा सकें जो टाइटन के मुक्ति-वेग से अधिक हो तो वह जीव हमेशा के लिए टाइटन की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर चला जाएगा और उपग्रह बनकर टाइटन के चक्कर काटता रहेगा।

"लेकिन वह छलाँग लगाएगा क्यों?" नींद में खलल पड़ने से झल्लाए हुए डॉ. राव ने पूछा।

"मैंने उसकी तरकीब भी सोच ली है।" अभियान का उत्तर था, "जीव के दिमाग में उसके ग्रह की श्रेष्ठता का दावा कूट-कूट कर भरा हुआ है। हम उसका उपयोग कर सकते हैं। मैं बातों-बातों में उससे पृथ्वी की सभ्यता के विकास और लम्बी व ऊँची कूद का ज़िक्र करूँगा। मुझे विश्वास है कि वह अपने ग्रह के आँकड़े बढ़ा-चढ़ा कर बताएगा।"

"और आप उसे छलाँग लगाकर दिखाने को कहेंगे।" गीता की समझ में बात आ गई थी, "अभियान,

हालाँकि आपका सुझाव अच्छा है, उसमें कई अगर-मगर लगे हुए हैं, फिर भी कोशिश तो की ही जाए। पर इससे पहले कि आप उसे कूदने को कहें, एक वाक्य जोड़ दीजिएगा, 'मान लो कि तुम अपने ग्रह पर हो।' एक बार जब वह मानकर चलेगा कि वह अपने ग्रह पर है तो टाइटन के गुरुत्वाकर्षण के बारे में उसे जो भी जानकारी है, वह नज़रअन्दाज़ हो जाएगी।"

***

"मान लो कि तुम अपने ग्रह पर हो!" अभियान ने धड़कते हुए दिल से कहा। वे जीव के साथ टाइटन की सबसे ऊँची पहाड़ी 'गिरि पीक' पर खड़े थे। पहाड़ी पर जाने का सुझाव सवेरे हुई मीटिंग में चेस्लॉव ने दिया था। उनका कहना था, "अगर उसे कूदना ही है तो जितनी ऊँचाई से कूदे, अच्छा है। उतनी ही ऊँची कक्षा में घूमेगा और हमसे उतना ही दूर रहेगा।" उसके मत का औरों ने भी समर्थन किया।

प्रोफेसर के सहयोगपूर्ण रुख को देखकर जीव भी आश्वस्त था कि कल का सबक प्रभावी रहा है। अभियान से उसे रवा बनाने की प्रक्रिया की सन्तोषजनक प्रगति का समाचार मिला और संकेत-उपकरण के बारे में काफी विस्तार से बातचीत हुई। "कुछ ही दिनों की तो बात है," उन्होंने कहा, "फिर तुम्हारा संकेत-उपकरण तैयार हो जाएगा, तब तक क्यों न दोस्ती के वातावरण में रहा जाए?" वे खूब सारी बातें करते रहे थे। अभियान उसे टाइटन का सारा भूगोल समझाने हेतु पहाड़ी पर ले गए। चढ़ते समय अभियान ने पृथ्वी की सभ्यता के बारे में काफी बातें कीं – खेल-कूद की भी, और फिर वे एथलेटिक्स पर आ गए। जीव की समझ में नहीं आ रहा था कि इन चीज़ों को धरती पर इतना महत्व क्यों दिया जाता है। अब कूदने को ही लो। ऊँचाई मालूम है। वातावरण का गतिरोध मालूम है। इसके आधार पर आरम्भिक गति का हिसाब लगाओ। पैरों को जुम्बिश दो, और कूद जाओ। इसलिए जब अभियान ने ऊँची-लम्बी कूद के रिकॉर्डों की बात की, तो उसे हँसी आ गई। लेकिन ग्रह की सभ्यता के श्रेष्ठत्व की बात थी। उसने कहा, "हमारे ग्रह पर तो लोग इससे दस गुना ऊँची छलाँग लगा लेते हैं।" आश्चर्य से अभियान बोले थे, "कूदकर दिखाओ, तो जानें।"

"कूदने को तो हज़ार गुना कूद जाऊँ, पर तुम पृथ्वी वालों के मान जाने के लिए कि हमारे ग्रह की सभ्यता उनसे श्रेष्ठ है, सौ गुना ही काफी है।" जीव ने कहा। वे लोग पहाड़ी की चोटी पर आ गए थे।

"मान लो, तुम अपने ग्रह पर हो..." अभियान का दिल तेज़ी-से धड़क रहा था, "यहाँ से तुम 2000 मीटर ऊँची और 3000 मीटर लम्बी छलाँग लगाओ, तो जानें।"

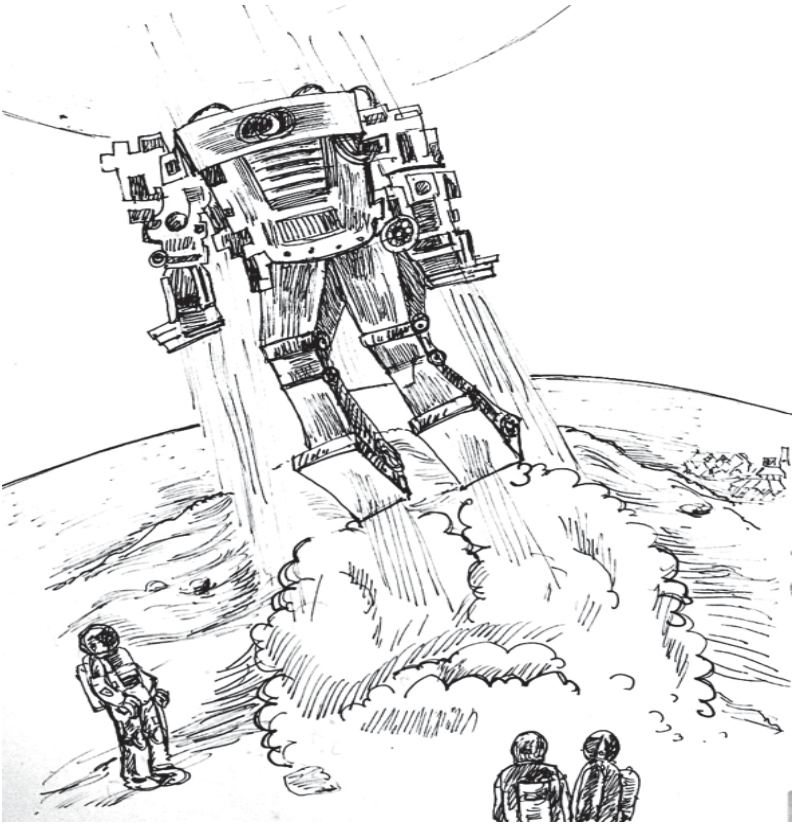

जीव का दिमाग तुरन्त प्रस्थान-स्थिति में पहुँच गया। हिसाब लगाया। इतनी ऊँची छलाँग के लिए इतनी प्रारम्भिक गति, इसके लिए पैरों को इतने बल से इस कोण पर जुम्बिश देनी होगी। उसकी आँखों से वे तमाम दूरबीनें छिपी हुई थीं जिनसे सारे वैज्ञानिक, साँस रोके हुए, अपेक्षित घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"मैं दस की उलटी गिनती गिनता हूँ।" अभियान ने कहा, "...सात... छह... पाँच... चार... तीन... दो... एक... जम्प!"

दूसरे ही क्षण तीर की तेज़ी-से जीव ऊपर की ओर उठ चुका था। गति देखकर ही अभियान जान गए कि जीव ने अपने ग्रह के हिसाब से छलाँग लगाई है। खुशी से उनकी आँखें नम हो आईं।

***

दीपू को छुट्टियों में धरती की सैर का आमंत्रण देकर उन्होंने सबसे विदा ली। चलने से पहले वे प्रोफेसर गॉस को अपने आने का सन्देश दे चुके थे। उड़ान भरने के कुछ मिनट बाद उन्होंने यान का नियंत्रण स्वचालित उड़ान-व्यवस्था के हाथों में सौंपकर आराम-से आँखें बन्द कर लीं।

***

दीपू खुशी से फूला नहीं समा रहा था। वह रातोंरात कॉलोनी का हीरो बन गया था। अभियान ने भरी कॉन्फ्रेंस में उसको कन्धे पर बिठा लिया था। उन्होंने दीपू से यह भी वादा किया था कि वे इस बार की छठी-सातवीं कक्षा को फिज़िक्स पढ़ाना जारी रखेंगे। वापस जाते ही डमरे साहब को स्वीकृति दे देंगे और हर लेसन दीपू को भेजेंगे। दीपू का आग्रह – 'अंकल, आप पढ़ाइए न' उनसे नकारते नहीं बना। न जाने धरती पर भी ऐसा ही कोई सन्दीप कहीं किसी समस्या को हल कर पाए। सब ने सर्वसम्मति से टाइटन के उस नए उपग्रह का नाम सन्दीप रखा।

अभियान के कारनामे की खबर पृथ्वी पर पहुँच चुकी थी। वहाँ भी उनके स्वागत की भव्य तैयारियाँ थीं।

अलार्म की तेज़ आवाज़ से उनके विचारों को एक झटका लगा। नियंत्रण-कक्ष के ऊपर लाल बत्ती जल रही थी। स्क्रीन पर समस्या लिखी हुई थी – 'तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र... पुरानी समस्या... समाधान नहीं... खतरा!'

अभियान का दिल डूबने लगा। 'तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र?' कहीं वे जीव के चक्कर में तो नहीं पड़ गए? उन्होंने अन्दर जाने की ज़हमत नहीं उठाई, बल्कि टीवी कैमरा ऑन करके अन्तरिक्ष में नज़र दौड़ाने लगे।

टाइटन के चक्कर काटता हुआ जीव साफ नज़र आ रहा था। अभियान की आशंका सही निकली। यान उसकी दिशा में ही खिंच रहा था। असहाय यान का जीव के हाथों में

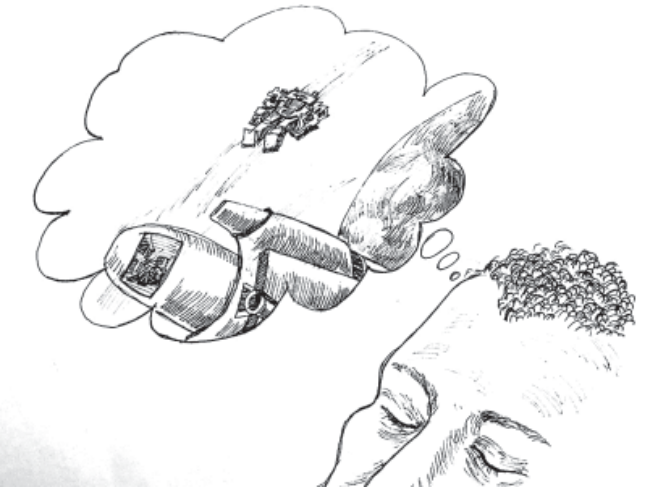

पड़ने का अर्थ था, सारे किए-कराए पर पानी फिरना। अभियान ने मन-ही-मन निर्णय लिया और पृथ्वी को अन्तिम सन्देश भेज दिया – "मैं यान को जीव से टकराकर तोड़ रहा हूँ, और खुद भी शहीद हो रहा हूँ। अलविदा!"

जीव के लिए यह आखिरी अवसर था। रॉकेट हथियाना उसके लिए ज़रूरी था। उसके अन्दर की बैटरियाँ और अधिक दिनों तक साथ देने वाली नहीं थीं, उसने इतनी सारी ताकत जो खर्च कर डाली थी। यह एकमात्र मौका था पृथ्वी पर पहुँचने का। यान उसकी ओर धीमी रफ्तार से खिंच रहा था। शायद अभियान पूरी शक्ति से उसे विरुद्ध दिशा में ले जाने के प्रयास में लगे थे।

यान अब कोई दो सौ मीटर की दूरी पर होगा। अभियान ने अचानक दिशा बदली और पूरी गति से यान को जीव की दिशा में बढ़ाया। एक्सेलरेटर अपनी उच्च्तम स्थिति में था... उन्होंने उलटी गिनती शुरू की – चार... तीन... दो... एक...

धड़ाम की आवाज़ के साथ उनको होश आया। अरे! वे तो अपने कमरे में थे। अलार्म घड़ी साढ़े चार बजा रही थी। कॉफी का पानी उबल रहा था और स्वचालित यंत्र पानी का तापक्रम बता रहा था। टाइटन... जीव... यान... टक्कर... दीपू... अभियान को भी हँसी आ गई। सपने भी क्या अजीब होते हैं। सारी रामायण उस डमरे को की गई 'ना' को 'हाँ' में बदलने के लिए तो नहीं थी? सपने का ही सही पर अपना वादा उन्हें याद था। उन्होंने डमरे का नम्बर मिलाया।

स्क्रीन पर अभियान का चेहरा देखकर डमरे साहब को आश्चर्य हुआ, "इतने सवेरे प्रोफेसर?"

"हाँ," अभियान ने जवाब दिया, "मैं इस साल भी आऊँगा पढ़ाने। तुम आज प्रयोगशाला में आ जाओ। बाकी बातें वहीं करेंगे। वैसे डॉ. राव के लड़के को धन्यवाद दो। उसी की सिफारिश पर तुम्हारा काम हुआ है।"

"पर... सन्दीप... वह तो टाइटन पर..." डमरे साहब को वैसा ही अचम्भित छोड़कर अभियान ने फोन रख दिया। वे काफी प्रफुल्लित महसूस कर रहे थे।

खैर, कारण चाहे खाक समझ में आया हो, प्रफुल्लित तो डमरे साहब भी महसूस कर रहे थे।

सतीश बलराम अग्निहोत्री: भारतीय प्रशासनिक सेवा के भूतपूर्व अधिकारी और अब आई.आई.टी. मुम्बई में प्राध्यापक। जन्म रत्नागिरी ज़िले के देवरुख गाँव में हुआ। बचपन बिहार के दरभंगा शहर में गुज़रा जहाँ स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई की। इसके बाद आई.आई.टी. मुम्बई से फिज़िक्स और फिर पर्यावरण विज्ञान में एम.टेक. किया। 1980 से भारतीय प्रशासनिक सेवा में ओडिशा राज्य एवं केन्द्र सरकार में कई विशिष्ट पदों पर 35 साल सेवारत रहे। हिन्दी में विज्ञान कहानियाँ और लेख लिखने की शुरुआत तब की जानी-मानी पत्रिका 'धर्मयुग' से हुई। व्यंग्य रचनाएँ भी लिखते रहते हैं। सम्पर्क - satishagnihotri1955.in

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहती हैं।

यह कहानी *धर्मयुग* पत्रिका में सन् 1978 में प्रकाशित की गई थी।

सवालीराम

सवाल: दूध फटने और दही जमने में क्या अन्तर है? शरीर में दूध बनने की प्रक्रिया क्या है? दूध खट्टा क्यों हो जाता है?

- रविशंकर सोनी (टिमरनी), आर.पी. शर्मा (चांदौन), म.प्र. (1988)

जवाब: दूध के बारे में ढेर सारे प्रश्न पूछे गए हैं। इन प्रश्नों के उत्तर अलग-अलग न देकर, एक साथ ही दिए जा रहे हैं। यदि पढ़ने के बाद और प्रश्न दिमाग में आएँ तो लिख भेजना।

सबसे पहले देखें कि दूध होता क्या है। दूध में मुख्यत: कुछ पदार्थ पानी में घुले होते हैं या कोलाइड अवस्था में निलम्बित होते हैं। ये पदार्थ हैं - वसा, प्रोटीन, लवण, विटामिन व लैक्टोज़ नामक शर्करा।

मनुष्य के दूध का औसत संगठन (ग्राम प्रति 100 मि.ली.):
पानी - 88
कार्बोहायड्रेट (लैक्टोज़) - 7
कुल प्रोटीन (कैसीन व अन्य) - 1.2
वसा - 3.8

इनके अलावा कई अन्य पदार्थ सूक्ष्म मात्रा में होते हैं। इनमें प्रमुख रूप से विभिन्न खनिज तत्व, विटामिन, इम्यूनोग्लोबुलिन होते हैं। इम्यूनोग्लोबुलिन व अन्य पदार्थ बच्चे के प्रतिरक्षा तंत्र को मज़बूती देते हैं।

दूध (चाहे मनुष्य का हो या गाय, भैंस, बकरी जैसे किसी पशु का) एक सफेद रंग का तरल पदार्थ होता है।

शुरुआत प्रश्न के बीच वाले हिस्से से कर सकते हैं: शरीर में दूध बनने की प्रक्रिया क्या है?

दूध बनने की प्रक्रिया का पूरा खुलासा नहीं हुआ है लेकिन मोटे तौर पर यह दूध ग्रन्थियों में निम्नानुसार होती है।

वैसे तो सारे घटक शरीर की कोशिकाओं में उपस्थित ही होते हैं। इन्हें मिलाने भर की बात है। विभिन्न कोशिकाओं से पदार्थ रिस-रिसकर स्तन की गुहा में इकट्ठे हो जाते हैं और दूध बन जाता है। आम तौर पर शरीर में पाए जाने वाले हारमोन्स इस प्रक्रिया को थामकर रखते हैं। इसीलिए हर समय दूध नहीं बनता। सामान्यत: गर्भावस्था के बाद ही दूध का उत्पादन शुरू होता है (वैसे कुछ अपवाद भी देखे गए हैं)। गर्भावस्था के मध्य में कभी दुग्ध ग्रन्थियाँ दूध उत्पादन के लिए तैयार हो जाती हैं लेकिन गर्भावस्था से जुड़े कुछ हारमोन उन्हें रोके रहते हैं। प्रसव के

बाद इन हारमोन की मात्रा कम हो जाती है और दुग्ध उत्पादन शुरू हो जाता है।

दूध के साथ मुख्य समस्या कैसीन और वसा को लेकर होती है। कैसीन दूध में उपस्थित प्रमुख प्रोटीन है और वसा के समान यह भी पानी में अघुलनशील है। एक बड़ी समस्या इसे घुलित अवस्था में परिवर्तित करने की होती है। जैसा कि सर्वविदित है, प्रोटीन अमीनो एसिड की शृंखलाएँ होते हैं। कैसीन ऐसे अमीनो अम्लों से बने होते हैं जिनमें एक हिस्सा जलस्नेही होता है और दूसरा हिस्सा जलद्वेषी होता है। दुग्ध ग्रन्थियों से निकलने के बाद इनमें कुछ परिवर्तन और होते हैं। इन परिवर्तनों का परिणाम यह होता है कि कैसीन के कई अणु मिलकर एक गेंदनुमा समूह (माइसेल) बना लेते हैं जिसमें जलस्नेही हिस्से बाहर की ओर होते हैं। इसके अलावा इन माइसेल में कैल्शियम के आयन भी कैद होते हैं। इन माइसेल की सतह पर ऋणात्मक आवेश होता है। इस वजह से ये एक-दूसरे को विकर्षित करते हैं और आपस में चिपककर बड़े समूह नहीं बना पाते और पानी में टँगे रहते हैं।

जैसा कि हमने देखा, वसा भी पानी में अघुलनशील होता है। कैसे यह दूध में वितरित होकर टँगा रहता है, इसकी भी क्रियाविधि है। दरअसल, दूध ग्रन्थियों में वसा के उत्पादन के समय ही उसकी अत्यन्त बारीक बूँदों पर एक आवरण चढ़ जाता है। यह आवरण तीन परतों से बना होता है, जिसमें प्रोटीन वगैरह होते हैं। ये बूँदें दूध में कोलायडी अवस्था में टँगी रह सकती हैं। दूध में अधिकांश वसा तो माँ के शरीर में उपस्थित सामान्य वसा से ही आता है, थोड़े वसा का उत्पादन दुग्ध ग्रन्थियों में नए सिरे से होता है।

शेष घटक (कैसीन के अलावा अन्य प्रोटीन, कुछ विटामिन, लवण आदि) तो घुलनशील होते ही हैं। तो कैसीन और वसा को 'घुलनशील' बनाकर दूध का निर्माण हो जाता है। लेकिन यह समझना ज़रूरी है कि कैसीन और वसा पानी में सही मायनों में घुले नहीं हैं बल्कि सिर्फ निलम्बित हैं। तो यह अवस्था काफी अस्थिर होती है, थोड़ी भी गड़बड़ी हो तो ये पदार्थ पानी से अलग होने लगते हैं।

चूँकि दूध में वसा और कैसीन अस्थिर अवस्था में हैं इसलिए इनका अलग हो जाना बहुत मुश्किल नहीं है। वसा तो बहुत आसानी-से अलग हो जाता है। दूध को थोड़ा हिलाया-डुलाया जाए या गर्म किया जाए तो वसा मलाई (क्रीम) के रूप में अलग होकर ऊपर तैरने लगता है। तुममें से कई लोगों ने सप्रेटा दूध का नाम सुना होगा। सेपरेटर नामक एक मशीन में दूध को रखकर घुमाया जाता है तो मलाई अलग हो जाती है और बाकी बचे दूध में वसा की मात्रा कम होती है – उसे सप्रेटा दूध कहते

हैं। आजकल फुल क्रीम मिल्क, टोन्ड मिल्क और डबल टोन्ड मिल्क के नाम से विभिन्न वसा प्रतिशत वाले दूध मिलते हैं।

दूध का फटना

यह तो तुम जान ही चुके हो कि दूध में कैसीन कोलायडी अवस्था में होता है और इसलिए निलम्बित रहता है क्योंकि कैसीन के माइसेल बन जाते हैं और प्रत्येक माइसेल की सतह पर ऋणात्मक आवेश होता है। यदि यह आवेश खत्म कर दें तो ये कैसीन-माइसेल आपस में जुड़कर बड़े-बड़े कण बना लेते हैं जो अब निलम्बित नहीं रह सकते। इसी को दूध का फटना कहते हैं। कैसीन अघुलित अवस्था में पहुँच जाता है। ऋणात्मक आवेश को खत्म करने का सबसे सरल तरीका है दूध में नींबू निचोड़ दिया जाए। इससे दूध की अम्लीयता बदल जाती है और कैसीन के लिए संकट पैदा हो जाता है। दूध के फटने में भी यही होता है। दूध में कुछ जीवाणु उपस्थित होते हैं। कई बार ये जीवाणु हवा से भी पहुँच जाते हैं। ये जीवाणु दूध में मौजूद लैक्टोज़ से क्रिया करते हैं और उसे लैक्टिक अम्ल में बदल देते हैं। इसी के कारण दूध खट्टा हो जाता है।

तुमने यह भी देखा होगा कि दूध को गर्म करके रखने पर वह ज़्यादा समय तक खराब नहीं होता। यदि कच्चा दूध ही रख दें तो वह जल्दी खराब हो जाता है।

जब हम दूध को गर्म करते हैं तो उसमें उपस्थित जीवाणु मर जाते हैं। हवा से दोबारा जीवाणु पहुँचने में समय लगता है। इसलिए जीवाणुओं की अनुपस्थिति में दूध देर तक खराब होने से बचा रहता है।

दूध को तेज़ गरम करके 15-20 सेकण्ड तक गर्म रखकर तेज़ी-से

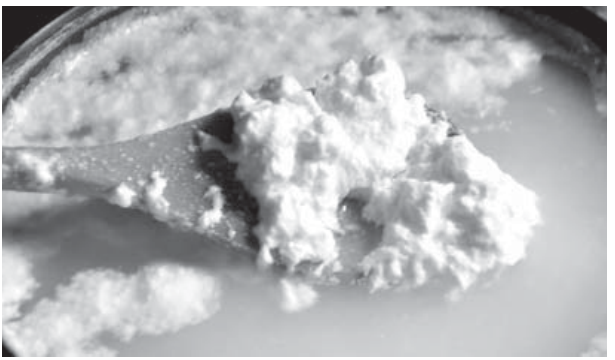

चित्र-1: *दूध में नींबू का रस निचोड़ने से दूध की अम्लीयता बदल जाती है और दूध फट जाता है। यह प्रक्रिया पनीर बनाने के लिए भी इस्तेमाल की जाती है।*

चित्र-2: *पाश्चरीकरण की प्रक्रिया। इसके बाद दूध काफी देर तर खराब नहीं होता।*

ठण्डा करने को पाश्चरीकरण कहते हैं। दरअसल, पैकेट में मिलने वाले दूध पर यही क्रिया की जाती है। इसलिए वह देर तक टिका रहता है।

तुमने यह भी देखा होगा कि गर्मियों में दूध जल्दी खराब होता है। इसका कारण यह है कि गर्मियों में सामान्य तापक्रम 35-40 सेंटीग्रेड के आसपास होता है जो जीवाणुओं की वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। इसलिए जीवाणु जल्दी-जल्दी प्रजनन करते हैं और दूध जल्दी खराब हो जाता है।

दही जमना

इतना तो तुम्हें मालूम ही है कि दही जमाने के लिए हल्के गुनगुने दूध में थोड़ा-सा दही मिलाकर रख दिया जाता है। वास्तव में, दही जमने के लिए भी जीवाणु ही ज़िम्मेदार हैं। किन्तु ये जीवाणु दूध फाड़ने वाले जीवाणु से अलग होते हैं। दूध में मिलने पर ये जीवाणु वृद्धि करने लगते हैं। इसमें भी ठोस पदार्थ जम जाते हैं परन्तु यह क्रिया ज़्यादा समरूप होती है और पानी अलग नहीं होता। दही की खटास लैक्टिक अम्ल के कारण ही होती है।

चाहे दूध का फटना हो या दही का जमना, दोनों में मुख्य किरदार कैसीन होता है। जैसा कि हमने पहले ही कहा था, कैसीन अमीनो अम्लों की एक लड़ी होती है। यह तो हुई इसकी रासायनिक रचना। लेकिन प्रोटीन का बड़ा अणु विशिष्ट तरीके से तह किया होता है। इसे हम उसकी भौतिक रचना कह सकते हैं। फिर हमने देखा कि कैसीन के कई अणु मिलकर एक समूह यानी माइसेल बना लेते हैं जो उसे निलम्बित अवस्था में रखता है। यह कैसीन की रचना का तीसरा स्तर है। अम्लीयता

चित्र-3: *लैक्टोबैसिलस* बैक्टीरिया लैक्टिक एसिड का उत्पादन करके और दूध के pH को कम करके, दूध को दही में बदल देते हैं। यही लैक्टिक एसिड दही को खट्टा स्वाद देता है।

बदलने से यह तीसरी जमावट टूटने लगती है और कैसीन के अणु बड़े-बड़े समूह बनाने को स्वतंत्र हो जाते हैं। यही ताना-बाना दही की समरूपता के लिए ज़िम्मेदार होता है। दूध फटने में यही क्रिया इतनी तेज़ी-से होती है कि कैसीन के अणुओं को चारों ओर के अणुओं से जुड़ने की फुरसत ही नहीं मिलती और वे छोटे-छोटे थक्कों के रूप में नज़र आते हैं। दही में कैसीन के अणु एक सघन ताना-बाना बना लेते हैं और हमें एक अर्ध-ठोस दही मिल जाता है।

दूध में डालने से पहले यदि दही को गर्म कर दिया जाए या उबलते दूध में दही डाला जाए तो दही नहीं जमता। बता सकते हो क्यों?

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

— — — — — —

इस बार का सवाल: आम जहाँ से टूटता है, उस काले हिस्से का चोप गले में खराश क्यों पैदा करता है?

मृगांक चमोली, कक्षा - 5
केन्द्रीय विद्यालय, पौड़ी, उत्तराखण्ड

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

जलवायु उथल-पुथल से खतरे में मधुमक्खियाँ

श्रेया

आज सुबह क्या आपने मुट्ठी भर चने, या एक सेब खाया, या एक कप कॉफी पी थी? यदि हाँ, तो मधुमक्खियों को धन्यवाद दीजिए। परागण में मधुमक्खियों की भूमिका अत्यन्त अहम है। भोजन के हर तीन में से एक निवाले को मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ताओं द्वारा सम्भव बनाया गया है। मधुमक्खियाँ लगभग 12 करोड़ वर्ष पूर्व रहने वाले प्राचीन शिकारी ततैया से विकसित हुई थीं। मधुमक्खियों की ही तरह, ये ततैया भी अपने घोंसलों का निर्माण और बचाव करती थीं, और अपनी सन्तानों के लिए भोजन इकट्ठा करती थीं।

भारत भर में पचास लाख हेक्टेयर फसल मधुमक्खियों द्वारा परागण पर निर्भर करती है। हालाँकि, मधुमक्खियों के कम या विलुप्त होने का खतरा लगातार बढ़ रहा है, जो दुनिया के लिए विनाशकारी होगा और मधुमक्खियों के बिना, शहद न उपलब्ध होना, हमारी सबसे मामूली समस्या होगी।

विलुप्ति के सम्भावित कारक

इस खतरे के कई कारक हैं, जिनमें निवास स्थान का नाश, कीटनाशकों का उपयोग, मधुमक्खियों में परजीवी संक्रमण, व्यावसायिक मधुमक्खी पालन का अत्यधिक दोहन और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं। ये सभी कारक आपस में जुड़े हुए हैं, और इनका संयुक्त प्रभाव मधुमक्खी की प्रजातियों को विलुप्ति की ओर ले जा रहा है।

यह ज्ञात है कि मधुमक्खियों का

ठण्डे वातावरण के लिए बेहतर अनुकूलन होता है। जलवायु परिवर्तन के कारण मधुमक्खियाँ अपने आवास खो रही हैं क्योंकि वे ठण्डे क्षेत्रों में प्रवास करने और नए छत्ते बनाने में असफल हो रही हैं। ग्लोबल वॉर्मिंग के कारण फूल निर्धारित समय से पहले खिल रहे हैं, जिस वजह से फूलों द्वारा पराग उत्पन्न करने और मधुमक्खियों के पराग को खाने के लिए तैयार होने के समय के बीच असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। यहाँ तक कि एक छोटा-सा असन्तुलन भी सम्भावित रूप से मधुमक्खियों के प्रजनन स्वास्थ्य और उनकी प्रतिरक्षा को प्रभावित कर सकता है।

यह भी देखा गया है कि तापमान कम होने पर मधुमक्खियों में रोग पैदा करने वाले परजीवी कम पाए जाते हैं, और जब तापमान बढ़ता है, तो मधुमक्खियों पर परजीवी संक्रमण का खतरा भी बढ़ जाता है।

जलवायु परिवर्तन मधुमक्खियों के लिए प्रमुख खतरा प्रतीत होता है। जिस गति से जलवायु बदल रही है, वह मधुमक्खियों को अनुकूलित होने के हिसाब से बहुत तेज़ है। यदि स्थिति ऐसी ही रही तो मधुमक्खियाँ कड़क सर्दी के मौसम में उपयोग करने के लिए मकरन्द इकट्ठा नहीं कर पाएँगी और न ही फूलों को परागित कर पाएँगी।

इसके लिए क्या कर सकते हैं?

इसका मतलब यह नहीं है कि हमें केवल विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन पर ध्यान देना चाहिए और अन्य कारकों को अनदेखा करना चाहिए। मधुमक्खियों की रक्षा के लिए, हम बहुत-से छोटे-छोटे कदम भी उठा सकते हैं।

पॉलिनेटर फ्रेंडली गार्डन (जिसमें अलग-अलग प्रजातियों के फूल हों, ताकि साल भर मधुमक्खियों के लिए मकरन्द उपलब्ध हो सके) लगाना, अपने बाग-बगीचों में रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से बचना, एक छोटे डिब्बे में पानी और कुछ पत्थर रखना ताकि मधुमक्खियाँ पत्थरों पर बैठकर पानी पी सकें यानी उनके लिए 'बी बाथ' बनाने जैसी छोटी-छोटी कोशिशें मधुमक्खियों के लिए अत्यन्त मददगार साबित हो सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन एक महत्वपूर्ण विषय है जिस पर न केवल मधुमक्खियों के हित के लिए, बल्कि सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य के लिए भी तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

श्रेया: इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एजुकेशन एंड रिसर्च, मोहाली में जीवविज्ञान की छात्रा हैं। रचनात्मक लेखन में रुचि। वे शब्दों के माध्यम से विज्ञान और दुनिया के बारे में लोगों के अन्दर आश्चर्य की भावना को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाना चाहती हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा
भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।